संवाद की महिला सहयात्री

(स्व से संस्था एवं समाज परिवर्तन की यात्रा)

SAMVAD संवाद

रजत जयंती 25 2001-2026 Samvad

Expression of Ethos and Ideology

संवाद की महिला सहयात्री

(स्व से संस्था एवं समाज परिवर्तन की यात्रा)

संवाद की महिला सहयात्री

(स्व से संस्था एवं समाज परिवर्तन की यात्रा)

संवाद रजत जयंती के अवसर पर प्रकाशित

संवाद
SAMVAD

104/ए, उर्मिला इन्क्लेव,
पीस रोड, लालपुर, रांची - 834001

संपादक मंडल
साल्गे मार्डी
सुनील मिंज
श्रावणी
शशि बारला

पृष्ठ सज्जा
राकेश कुमार राउत

आवरण
इंडिजिनोग्राफिक्स

©सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशन वर्ष : 2026

प्रकाशक : संवाद, 104/ए, उर्मिला इन्क्लेव,
पीस रोड, लालपुर, रांची - 834001

प्रसार कार्यालय
संवाद, 52 बीघा, मधुपुर - 815353
देवघर (झारखंड)

मुद्रक : आई. डी. पब्लिशिंग, रांची

Samvad Ke Mahila Sahyaatri

संवाद की महिला सहयात्री : आत्मकथाओं के बहाने समाज परिवर्तन का दस्तावेज़

'संवाद की महिला सहयात्री' पुस्तक मात्र संस्मरणों का संकलन नहीं है, बल्कि यह पुस्तक संवाद से जुड़ी वैसे महिला कार्यकर्ताओं के जीवन का दस्तावेज़ है, जिन्होंने अपने निजी संघर्षों के रास्ते समाज के परिवर्तन की राह बनाई है। यह किताब हमें बताती है कि परिवर्तन किसी बड़े मंच, बड़े नाम या बड़े संसाधनों से ही नहीं आता – कभी-कभी वह एक गाँव की महिला की चुपचाप बढ़ती हिम्मत से भी जन्म लेता है।

इस संग्रह में शामिल लेखिकाएँ अपने अपने जीवन की कहानियाँ कहती हैं। लेकिन ये कहानियाँ 'मैं' पर समाप्त नहीं होतीं। हर 'मैं' के भीतर एक 'हम' छिपा है – गाँव की महिलाएँ, आदिवासी समाज, वंचित परिवार, ग्रामसभा और वह सामूहिक चेतना जिसे 'संवाद' जैसी संस्था ने वर्षों तक सींचा है।

इन आत्मकथाओं का सबसे सशक्त पक्ष यह है कि ये न तो करुणा बटोरने की कोशिश करती हैं और न ही स्वयं को 'असाधारण' साबित करने की। यहाँ स्त्रियाँ अपने जीवन को उसी सहजता से रखती हैं, जैसे वे जीती रही हैं – गरीबी, बीमारी, पितृसत्ता, घरेलू हिंसा, अकेलापन, सामाजिक ताने, आर्थिक असुरक्षा के साथ। यही सादगी इन कथाओं को असाधारण बनाती है।

इस पुस्तक का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि यह विकास को किसी अमूर्त सिद्धांत की तरह नहीं, बल्कि रोज़मर्रा के अभ्यास के रूप में प्रस्तुत करती है। ग्रामसभा में महिलाओं की भागीदारी, सरकारी योजनाओं तक पहुँच, बचत समूह, सहकारिता, खेती, स्वास्थ्य, शिक्षा–ये सभी बड़े-बड़े शब्द यहाँ ज़मीन पर उतरते दिखते हैं। हम देखते हैं कि कैसे एक महिला किसी का फॉर्म भरने में मदद करती है, किसी को पेंशन

दिलवाती है, कहीं सड़क या पानी की समस्या उठाती है—और यही छोटे-छोटे काम मिलकर लोकतंत्र को जीवित रखते हैं।

'संवाद' इस पुस्तक में संस्था के रूप में नहीं, बल्कि एक सहयात्री की तरह उपस्थित है। यह संस्था इन महिलाओं को बोलना सिखाती है, सुनना सिखाती है, सवाल करना सिखाती है – और सबसे ज़रूरी, अपने अनुभवों को महत्वपूर्ण मानना सिखाती है। यही कारण है कि इन कथाओं में आत्मविश्वास धीरे-धीरे विकसित होता दिखता है; कहीं झिझक टूटती है, कहीं डर छूटता है, कहीं मंच पर बोलने की हिम्मत आती है।

यह पुस्तक हमें यह भी सोचने पर मजबूर करती है कि 'सशक्त महिला' की हमारी प्रचलित छवि कितनी सीमित है। यहाँ महिलाएँ न तो कॉरपोरेट बोर्डरूम में बैठी हैं, न ही टीवी डिबेट का हिस्सा हैं—लेकिन वे अपने समाज की दिशा तय कर रही हैं। वे राजनीति को सत्ता के खेल के रूप में नहीं, बल्कि सामूहिक निर्णय की प्रक्रिया के रूप में समझती हैं। यही असली लोकतांत्रिक चेतना है।

भाषा के स्तर पर यह पुस्तक कहीं-कहीं असंपादित, कच्ची, पुनरावृत्तिपूर्ण लग सकती है—लेकिन यही इसकी ताक़त है। यह कच्चापन जीवन का है, अनुभव का है। यहाँ शब्दों से ज़्यादा महत्व उस साहस का है, जो इन शब्दों के पीछे खड़ा है।

आज जब महिला सशक्तिकरण अक्सर परियोजनाओं, आँकड़ों और रिपोर्टों तक सीमित हो गया है, 'संवाद की महिला सहयात्री' हमें मूल प्रश्न की ओर लौटने को कहती है—क्या महिलाओं को अपने जीवन पर निर्णय लेने का अधिकार मिला है? क्या उनकी आवाज़ को सुना जा रहा है? क्या उनके अनुभव को ज्ञान माना जा रहा है? यह पुस्तक इन प्रश्नों का उत्तर आँकड़ों से नहीं, जीवन से देती है।

अंततः, यह पुस्तक उन तमाम लोगों के लिए है जो समाज परिवर्तन की प्रक्रिया को समझना चाहते हैं। यह हमें याद दिलाती है कि परिवर्तन की सबसे मजबूत बुनियाद आत्मकथा होती है—क्योंकि जो अपना सच कह सकता है, वही समाज का सच बदल सकता है।

'संवाद की महिला सहयात्री' वास्तव में सहयात्रा का निमंत्रण है – उन रास्तों पर चलने का, जो संघर्ष से होकर गरिमा तक जाते हैं।

- संपादक मंडल

दो शब्द

किसके रोके रुका है सबेरा

'आधी दुनिया' पत्रिका के अंक-2 (अप्रैल-जून) एवं अंक-3 (जुलाई-सितंबर - 2023) में जमीनी कार्यकर्त्ताओं की साहसिक और संघर्ष की कहानी छपी है। कुल 27 महिलाओं की रचनाएं हैं जो अपने आप में बेहद खास है। इक्कीसवीं सदी के चरम पर आधी आबादी की अपनी अहम उपलब्धियां हैं बावजूद इसके उपेक्षित और वंचित महिलाओं की स्थिति परिस्थिति और वास्तविकता को जानना बेहद जरूरी है क्योंकि इसके बिना सामाजिक बदलाव के दावे-वादे और सारे आंकड़े अधूरे हैं।

आपके रु-ब-रु हो रही हैं लेखिका मालती/रचना है - मेरा हक मेरी पहचान; पार्वती/उलझनें अब सुलझने लगी हैं; सरिता मूर्मू/नदियों की तरह संघर्ष करती सरिता; ललिता/नई राहें मांगती है महिलाएं; फातिमा/धैर्य बनाए रखिए हार के आगे जीत है; सुमित्रा हेम्ब्रम/अनेकता में एकता; निरसो हांसदा/मेरे भीतर बदलाव दबे पांव आ रहा है; सुशीला हेम्ब्रम/चलकर राह बनाती रही कदम दर कदम; मनोनित रेबेका तोपनो/एकल मां-मौत भी तुझसे हारी है; सीमा/अस्तित्व के संघर्ष में छिपा होता है उत्कर्ष; सालगे मार्डी/अंधेरे को क्यों धिक्कारें अपने भीतर दीप जला लें; श्रावणी/एक सफरनामा : मिट्टी कहे कुम्हार से तुम गुरू हम लोई; मती मुर्मू/अपनी जड़ों से जुड़ने का सपना हुआ साकार; सुनीता मुर्मू/रचना और संघर्ष का अनुभव हमें स्वावलंबी बनाता है - इसके अतिरिक्त कुछ और भी रचनाकार हैं जिन्हें आप इस पुस्तक में पढ़ेंगे। इनको पढ़ना अनुभव सम्पन्न ही नहीं बनाता है बल्कि नया नजरिया भी देना है। नवोदित रचनाकारों के लिए चंद पंक्तियां - पूर्व चलने के बटोही, बाट की पहचान कर ले

पुस्तकों में है नहीं छापी गई इसकी कहानी
हाल न इसका ज्ञात होता है, है न औरों की जुबानी...

इसलिए लिखें और लिखें क्योंकि लेखनी किसी की बपौती नहीं। नदियों ने पहाड़ों

को चीरते फलांगते रास्ते निकाले चिड़ियों को आसमान में कोई पद चिन्ह नहीं मिले, खिलते फूलों को किसी ने दिशा ज्ञान नहीं दिया। इसी तरह अपने लेखन से अपनी मिसाल आप स्वयं ही बनें।

सभी रचनाकारों को पढ़ते हुए कुछ ऐसा लगा कि स्त्रियों को सुरक्षा, संरक्षण, संवर्द्धन और संस्कारों के नाम पर परिवार में जिस तरह कुंद बंद किया है वह पुरुष सत्तात्मक समाज की एक बड़ी और गहरी साजिश है। परिवार में स्त्रियों का कुछ होता ही नहीं सिवाय भावनात्मक संबंध के। वंश किसी स्त्री का तो चलता नहीं। यकीनन हर घर में स्त्री ने पुरुषों का वंश चलाने, घर संवारने, रिश्तों को बचाए रखने में अपने जीवन का जितना समय, श्रम, स्वप्न, इच्छाओं-आकांक्षाओं को लगाया है, लगा रही हैं, उतने का आधा हिस्सा भी अपने व्यक्तित्व को संवारने और स्वावलंबी होकर जीने में लगातीं तो उन्हें जिल्लत भरी जिंदगी और नारकीय यातनाओं से बहुत पहले मुक्ति मिल जाती। निश्चय ही तब सामाजिक संरचना ऐसी नहीं होती जैसी बहुत बदलाव के बावजूद आज की तारीख में आम स्त्रियों की है। स्त्रियों का जीवन-सफर कोख के अंधेरे से कब्र के अंधेरे तक का था। शिक्षा की रौशनी ने उन्हें नई पहचान दी गुमनामी से निकाला। सदियों से स्त्रियों ने जमाने का दिया दुख, अपमान, पीड़ा-प्रताड़ना को अपनों के बलबूते सहा मगर जब भी अपनों से अपमान उपेक्षा मिली तो हालात बद से बदत्तर होते गए। समाज को हर काल में सीता चाहिए। पांच पति को सिर माफे स्वीकार करने वाली द्रौपदी, पर महाभारत कराने का दोषारोपण किया जाता रहा है, लेकिन दबी ज़ुबान से उठने वाले सवाल हमेशा हाशिए पर ही रह गए कि हारे हुए पतियों को जुए की दांव पर द्रौपदी को लगाने का हक किसने दिया? द्रौपदी को इतना बड़ा अपमान गैरों से नहीं अपनों से मिला। स्व के मान के लिए द्रौपदी ने जो किया उसे गलत कैसे करार दिया जा सकता है। सीता का त्याग समाज में आदर्श बनाया गया किंतु द्रौपदी के साहस, संकल्प और संघर्ष को नहीं।

परिवार व समाज के मकड़जाल को तोड़कर आगे आने वाली महिलाओं को कभी भी सहज ही स्वीकारा नहीं गया। इस पुस्तक में स्व की पहचान कराती आम स्त्रियों ने जो भी लिखा है उल्लेखनीय है क्योंकि स्त्रियां जब अपने श्रम और संघर्ष का हिसाब मांगेगी तो पारिवारिक, सामाजिक और धार्मिक ढांचा चरमरा जाएगा। स्त्री होना आसान नहीं है। जन्म से ही कमतर आंकी जाने वाली लड़की का संघर्ष बड़ा है। एक पुरुष का वंश चलाने के लिए नौ महीने गर्भ की पीड़ा और बच्चे को पालने का सिर्फ

बीड़ा ही नहीं उठाती बल्कि उससे पूर्व होश संभालती, जमाने की आंखों की आंच से खुद को बचाती, छिपाती बड़ी होती है। तेरह-चौदह वर्ष की उम्र से हर माह माहवारी के दर्द को झेलती है। युवावस्था में सपने के राजकुमार की खोज होती है। विवाह भार परिवार वाला सहता हुआ बेटी को विदा करता है किसी अजनबी के साथ जीवन सफर पर। तब मन और संपूर्ण जीवन देकर भी जब स्त्री पाती है धोखा, छल, उपेक्षा और शारीरिक व मानसिक स्तर पर प्रताड़ना तो किस कदर अहसाय हो जाती है स्त्रियां इसको शब्द देना संभव नहीं। किंतु संवाद के इस पहल ने सेंधमारी की है इक्कीसवीं सदी की उन महिलाओं के जीवन में जो गुमनामी की अधमरी जिंदगी को ढोती हुई चल रही थीं। संवाद से जुड़ी महिलाओं ने जिस साफगोई से आप बीती को लिखा है उस दल-दल से निकलने के लिए और उस पीड़ा से उबरने के लिए तथा खुद को साबित करने के लिए जो कुछ किया है उसे पढ़ा जाना चाहिए क्योंकि बदलाव की जो लहर उठी है उसे बांध कर रखना संभव नहीं क्योंकि - ''किसके रोके रुका है सबेरा।''

महिला रचनाकारों को पाठकों की जमीन मिलना आसान नहीं रहा है, लेकिन उन्होंने हार नहीं माना है इसके ज्वलंत प्रमाण है अनामिका जी की ये पंक्तियां - एक दिन हमने कहा - हम भी इंसान हैं

हमें कायदे से पढ़ो एक एक अक्षर
जैसे पढ़ा होगा बी.ए. के बाद
नौकरी का पहला विज्ञान...

- डॉ. अलका सिंह

विषय सूची

मेरा हक मेरी पहचान 13
मालती

उलझनें अब सुलझने लगी हैं 17
पार्वती

संघर्ष और रचना की हमारी यात्रा 21
एनी टुडू

नदियों की तरह संघर्ष करती सरिता 25
सरिता मुर्मू

अंधेरे को दूर भगाती मैं पूर्णिमा हूं! 32
पूर्णिमा बिरुली

नई राहें मांगती हैं महिलाएं 35
ललिता

शिक्षा आगे की राह को सुगम बनाती है 39
सागोरी हेम्ब्रम

धैर्य बनाए रखिए, हार के आगे जीत है 42
फातिमा

अनेकता में एकता 47
सुमित्रा हेम्ब्रोम

इसलिए राह संघर्ष की हमने चुनी 51
कल्पना कुंवर

मेरे भीतर बदलाव दबे पांव आ रहा है.. 55
निरसो हांसदा

चलकर राह बनाती रही कदम-दर-कदम 58
सुशीला हेम्ब्रोम

एकल मां - मौत भी तुझसे हारी है 61
मनोनित तोपनो

अपनी मुक्ति की लड़ाई खुद ही लड़नी है 69
मिनीला बासकी

एक मां की संघर्ष-गाथा 72
वीणा वर्मा

अस्तित्व के संघर्ष में छिपा होता है जीवन का उत्कर्ष 77
सीमा

अंधेरे को क्यों धिक्कारें : अपने भीतर का दीप जला लें 81
सालगे मार्डी

एक सफरनामा : स्व से समाज तक 88
शशि बारला

हिम्मत से पतवार संभालो फिर क्या दूर किनारा 94
श्यामली

मेरा आत्मविश्वास कहता है परिवर्तन एक दिन अवश्य आयेगा 98
कुसुम देवी

करत - करत अभ्यास नित, हम हुई सुजान 101
शांति सोरेन

मिट्टी कहे कुम्हार से, तुम गुरु हम लोई 106
श्रावणी

बीती ताहि बिसारिए, आगे की सुधि ले 113
सुनीता मुर्मू (दुमका)

बदलाव का नजरिया चाहिए स्व के विकास के लिए 117
अन्ना सोरेन

अपनी जड़ों से जुड़ने का सपना हुआ साकार 121
मती मुर्मू

रचना और संघर्ष का अनुभव हमें स्वावलंबी बनाता है 129
सुनीता मुर्मू (मुसाबनी)

महिला किसान की जीवन-यात्रा 133
सुमित्रा कुजूर

मेरा हक मेरी पहचान

- मालती

"मानव जीवन कई अवस्थाओं से होकर गुजरता है। बचपन अर्थात बाल्यकाल सबसे स्वर्णिम अवस्था है। इस समय मन में यह चिंता नहीं रहती है कि हम क्या खाएं,क्या पहनें एवं मेरा भविष्य क्या होगा। माता-पिता की छत्रछाया में रहने से इन सारी चीजों से कभी पाला ही नहीं पड़ता है। यहां हम कह सकते हैं कि बेफिक्री से रहने का नाम ही बचपन है। मौज-मस्ती 'खेलकूद' इन सब के साथ जीना ही बचपन को सही मायने में जीना है। मैंने भी अपना बचपन मस्ती से गुजारा। जब तक बाबा जीवित थे, तब तक यह नहीं सोचा कि मुझे आगे क्या करना है? जब बाबा गुजर गये तब मेरे सामने यह सवाल मुंह बाये खड़ा था कि मैं क्या करूं? आगे की कोई योजना नहीं थी। सुमित्रा दीदी के साथ रहते हुए मैंने समाज कर्म को समझा था। अत: सामाजिक कार्य करना मुझे सटीक लगा।"

झारखंड राज्य के गुमला जिले के सिसई प्रखंड के अंतर्गत एक गांव है लकेया। इसी लकेया गांव में मेरा जन्म हुआ है। मेरे पिता का नाम निरंजन उरांव था एवं माता का नाम धिबल देवी है। मेरी प्रारंभिक शिक्षा कन्या मध्य विद्यालय सिसई, माध्यमिक शिक्षा माधि उच्च विद्यालय सिसई तथा इंटर तक की पढ़ाई बी.एन. कॉलेज सिसई से हुई। मेरे परिवार में अभी माता, 2 भाई, 2 बहन, भाभी एवं उसके दो बच्चे हैं। मैं भाई बहनों में दूसरे नंबर पर हूं। जीवन बहुत अच्छे से चल रहा था। परंतु कहते हैं न समय का पहिया एक सा नहीं घूमता है। कभी आप सुख में जीते हैं तो कभी दु:ख में। मेरे साथ भी ऐसा हुआ। 2009 में पिताजी के गुजर जाने के बाद परिवार को काफी कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। कष्ट भरे जीवन गुजर रहे थे। कष्ट भी जब आता

है तो छप्पर फाड़कर आता है। घर में आर्थिक तंगी तो थी ही, ऊपर से अचानक पेड़ से आम तोड़ते वक्त मैं गिर गयी और मेरी रीढ़ की हड्डी में बहुत चोट आई। चोट इतना गंभीर था कि रीढ़ के नस का ऑपरेशन करना पड़ा। छह माह मैं बिस्तर पर पड़ी रहीं। धीरे-धीरे स्वास्थ्य में सुधार होने लगा।

ठीक होने के बाद मुझे लगने लगा कि अपने घर को चलाने के लिए मुझे कुछ करना चाहिए। पर क्या करूं? कुछ समझ में नहीं आ रहा था। मेरे क्षेत्र में सुमित्रा दीदी 'जुड़ाव' से जुड़कर ग्राम सभा सशक्तीकरण, महिला अधिकार, आदिवासी मुद्दों पर कार्य कर रही थी। बीच-बीच में मैं उनके कार्यक्रमों में जाती तो नयी-नयी चीजों को जानने एवं नये-नये लोगों से मिलने का अवसर मिलने लगा।

मेरे सामाजिक कार्यों के सफर की शुरुआत पर्यावरण चेतना केन्द्र, पोटका के कार्यों से हुई। पर्यावरण चेतना केन्द्र के सिद्धेश्वर दा मेरे गांव लकेया आये थे। सुमित्रा दीदी के साथ मैं उनसे पहले भी मिल चुकी थी। उन्होंने मुझसे पूछा कि मालती, पर्यावरण चेतना केन्द्र का काम लकेया में शुरु होने वाला है क्या तुम इससे जुड़ना चाहोगी? मैंने तुरंत हामी भरी और 'पर्यावरण चेतना केन्द्र' के कार्यालय पोटका गयी। पोटका से ही प्रशिक्षण के लिए मैं रायपुर चली गई। प्रशिक्षण से लौटने के पश्चात मुझे क्या कार्य करना है? कैसे करना है? यह बतलाया गया। 10 गांवों का चयन कर उसमें ग्रामसभा सशक्तीकरण, महिला सशक्तीकरण, पारंपरिक खेती इत्यादि कामों के प्रति लोगों को जागरुक करना था। अपने गांव से तो मैं भलीभांति परिचित थी परंतु अन्य गांव मेरे लिए अनजान थे। मैं अपने भाई की मदद से गांव में संपर्क करने लगी। संपर्क के दौरान ही गांव के ग्राम प्रधान, मुखिया, सहिया, वार्ड एवं महिला समूह से सीधा परिचय हुआ। मैं जब भी कोई नया गांव जाती तो महिला समूह एवं गांव के लोगों को अपना परिचय देती कि मैं मालती लकेया गांव से आयी हूं फिर अपना काम बताती। लोगों से जान पहचान बढ़ने के पश्चात मुझे काम करने में आसानी होने लगी। मैं गांव के ग्राम सभा बैठकों में जाने लगी वहां लोगों से मिलकर ग्राम सभा में महिलाओं की भागीदारी पर चर्चा करती। उस समय ग्राम सभा की बैठकों में महिलाएं भाग नहीं लेती थीं। महिला समूह बनाकर उन्हें भी ग्राम सभा बैठकों में भाग लेने के लिए प्रेरित करती। 2015 में मैं 'संवाद' से जुड़ गयी। 'संवाद' से जुड़ने के बाद विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षणों में भाग लेने लगी। इससे नयी-नयी जानकारी मिलती। अपने अंदर आत्मविश्वास भी आने लगा। कार्यशाला, सम्मेलनों में जब बात रखने को कहा जाता

तो शुरू-शुरू में डर लगता पर धीरे-धीरे डर खत्म होने लगा, झिझक भी मिटी। अब मैं भी अपनी बातों को बेबाकी से रखने लगी हूं।

मैं भी समूह बनाने के बाद बचत करने लगी। बचत के पैसों से हमारे समूह की महिलाएं शामियाना, कुर्सी, टेंट, ड्रम एवं खाना बनाने के बर्त्तनों इत्यादि की खरीद की है। जब भी गांव के किसी परिवार में कोई भी कार्यक्रम होता है तो समूह की महिलाएं गांव के लोगों को कम दर पर इन सामानों की आपूर्त्ति करती हैं। इसके दो फायदे होते हैं - गांव के लोगों को कम दर पर सामान मिलता है एवं गांव का पैसा गांव में ही रह जाता है। समाज के साथ-साथ महिलाओं को भी आर्थिक लाभ होता है।

लकेया की महिला समूह से प्रभावित होकर मेरे कार्यक्षेत्र के अन्य गांव की महिलाएं भी संगठित होने लगीं एवं समूह बनाकर बचत करने लगीं। उन लोगों ने भी अपने आय को बढ़ाने के लिए कई अभिक्रम शुरू किये हैं। कोई समूह सूअर पालन कर रहा है तो कोई समूह मुर्गी पालन कर रहा है। अब महिला समूहों ने बैंक में अपना खाता भी खुलवा लिया है। संगठित होकर काम करने के उनके अनुभवों से अन्य लोगों को भी लाभ होता है।

महिलाएं संगठित होकर समाज की समस्याओं को भी सुलझा रही हैं। सड़क पर जल जमाव हो, रास्ता बनवाना हो वे प्रशासन से अब गुहार नहीं लगातीं, बल्कि अपना कार्य पूरा करवा ही लेती हैं। बचत के साथ-साथ अन्य सामाजिक मुद्दों पर चर्चा करती हैं। इससे पता चलता है कि वे राजनीतिक चेतना से लैस हो रही हैं। जब उन्हें देखती हूं तो मेरे अंदर भी ऊर्जा भर जाती है।

परियोजना के माध्यम से ग्राम सभा सशक्तीकरण, सतत् आजीविका, महिला सशक्तीकरण, सरकारी योजनाओं तक ग्रामीणों की पहुंच बढ़ाने का कार्य कर रही हूं। साथ ही जिनको भी आय प्रमाण पत्र, जाति प्रमाण पत्र, मृत्यु प्रमाण पत्र, जन्म प्रमाण पत्र इत्यादि बनवाना होता है, उसके आवेदन फार्म भरने में सहयोग करती हूं। सरकारी योजना का लाभ लोगों को मिले इसके लिए उन्हें जागरुक तो करती हूं, साथ ही फार्म भरने इत्यादि में मदद भी करती हूं। जब भी ग्रामीणों को मेरी जरूरत होती है हरदम उनके साथ खड़ा होने का प्रयास करती हूं। बहुत खुशी मिलती है जब हमारे प्रयास से किसी को कुछ लाभ पहुंचता है। आज मेरी पहचान यदि समाज में बनी है तो वह ‘संवाद’ के बदौलत ही क्योंकि वहां से जुड़ने के पश्चात ही मेरे अंदर मुद्दों को समझने, उसका विश्लेषण करने एवं कोई भी समस्या के समाधान हेतु आत्मविश्वास

आया है। आज जब महिलाएं ग्राम सभा की बैठकों में आती हैं और अपनी बातों को रखती हैं तो मन को सुकून मिलता है और लगता है सचमुच में मैं जो कार्य कर रही हूं यह इसी का प्रतिफल है। पहले घर से अकेले बाहर जाने में डर लगता था। अब अकेले कहीं भी आ जा सकती हूं। मंचों से अपनी बातों को रख पाती हूं। यह तभी संभव हो पाता है जहां आप काम करते हैं वहां आपके विकास के लिए अभिक्रम किये जाते हैं। सचमुच 'संवाद' से जुड़े साथियों ने हमेशा मेरा मनोबल बढ़ाया है। आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया है। आज मेरी पहचान सामाजिक कार्यकर्त्ता के रुप में बन चुकी है। जब भी कोई बैठक इत्यादि होती है और लोग मुझे बुलाते हैं तो बहुत अच्छा लगता है। मैं आगे भी अपना पूरा समय गांव समाज को देना चाहूंगी ताकि मेरा समाज आगे बढ़े।

❑❑

उलझनें अब सुलझने लगी हैं

- पार्वती

"आज जमाना बदल रहा है। बदलते जमाने के साथ-साथ परिवार का ढांचा भी बदल रहा है। संयुक्त परिवार के स्थान पर व्यक्तिगत परिवारों की संख्या बढ़ रही है। संयुक्त परिवार के अपने लाभ-हानि हैं तो व्यक्तिगत परिवार के अपने। संयुक्त परिवार में सुख दु:ख साझा होता है। कार्यों का बंटवारा होता है। अभिभावक की छत्र छाया में होने के कारण लोग सुकून से रहते हैं। बड़ों की आज्ञा माननी पड़ती है वहीं व्यक्तिगत परिवार में जब भी कोई दु:ख होता है उसे अकेले झेलना पड़ता है। कार्यों का बोझ भी अकेले उठाना पड़ता है, खासकर महिलाओं को। महिला यदि कामकाजी हो तो घर बाहर की जिम्मेवारी दोनों उठानी होती है। बच्चा छोटा हो तो कभी-कभी कार्य भी छोड़ना पड़ता है। मैं जब संयुक्त परिवार में रह रही थी तो सब कुछ ठीक-ठाक था, पर जैसे ही घर का बंटवारा हुआ कार्यों का दोहरा बोझ बढ़ा। परिवार चलाने की जिम्मेवारी भी निभानी पड़ी। बाल बच्चों की देखभाल भी करनी पड़ती। बच्चा छोटा था तो काम भी छोड़ना पड़ा। पर सीखने एवं आगे बढ़ने की लालसा को मैंने कभी नहीं छोड़ा। परिवार चलाने के लिए मैंने कई क्षेत्रों में काम किया और हर जगह मैंने कुछ नित नया सीखा। अपने इन्हीं खट्टे-मीठे अनुभवों को साझा करते हुए मुझे खुशी भी मिल रही है तो संघर्षों को याद करके आंखों में नमी भी छा जा रही है। तो चलिए मेरी विकास यात्रा के संस्मरणों को जानने के लिए तैयार हो जाइए।"

रामगढ़ जिले का एक गांव है- बड़की लाड़ी। इसी गांव में मेरा जन्म हुआ। पिता सोनाराम महतो एवं माता रासो देवी की मैं सबसे छोटी बेटी हूं। हम चार बहनें ही हैं। बहनों में मैं सबसे छोटी! सबसे छोटी होने के कारण लाड़ दुलार भी ज्यादा मिलता रहा।

बचपन ठीक-ठाक गुजरा। प्राथमिक शिक्षा राजकीय प्राथमिक विद्यालय लाड़ी, माध्यमिक की पढ़ाई कृष्ण बल्लभ उच्च विद्यालय लाड़ी में तथा इंटर एवं स्नातक की पढ़ाई रामगढ़ कॉलेज रामगढ़ में हुई। पढ़ाई के दौरान ही मेरी शादी हो गई।

शादी के बाद भी मैंने अपनी पढ़ाई जारी रखी। जब मैं बी.ए. फाइनल वर्ष की परीक्षा का फार्म भर रही थी उसी दिन से मेरी तबीयत खराब हो गई। मैं तो ठीक हो गई परंतु मेरे ससुर गंभीर रूप से बीमार पड़ गये। उन्हें अस्पताल में भर्ती कराना पड़ा। उनके इलाज में काफी पैसा खर्च करने के बावजूद हम उन्हें बचा नहीं पाये। इलाज इतना महंगा कि हम सब कर्ज में डूब गये। उनके जीवित रहते घर ठीक से चलता था परंतु उनके मृत्यु के पश्चात सब अलग-अलग हो गये। यों कह सकते हैं कि ससुर की मृत्यु के बाद मेरे 'स्व' की स्थिति काफी खराब हो गई। घर में खाने को लाले पड़ गये पर मैंने हिम्मत नहीं हारी। लोगों से कर्जा लेकर बी.ए. की परीक्षा दी। उसके बाद बच्चों को ट्यूशन पढ़ाना एवं सिलाई करना शुरू किया तो घर का कुछ खर्चा निकलने लगा। 1998 ई. में बी.ए. उत्तीर्ण करने के बाद बालिका उच्च विद्यालय लाड़ी, सुकरीगढ़ा में संस्कृत शिक्षिका के रूप में योगदान दिया। विद्यालय जाने आने के क्रम में पता चला कि बिहार शिक्षा परियोजना में बहाली चल रही है। मैंने साक्षात्कार दिया एवं प्रशिक्षण के उपरांत ग्राम शिक्षा समिति गठन का कार्य करने लगी।

उस समय प्रतिदिन के हिसाब से 80 रुपये मजदूरी मिलती थी। उसके बाद मैंने 1999 में मास्टर ट्रेनर के लिए साक्षात्कार दिया एवं चयनित भी हो गई। प्रशिक्षण के उपरांत हजारीबाग जिले के विभिन्न प्रखंडों के प्राथमिक एवं माध्यमिक स्कूलों में अपना कार्य करने लगी जिन गांवों में बिहार शिक्षा परियोजना के तहत पहले कार्य कर चुकी थी वहां तो काम करने में कोई कठिनाई नहीं हुई पर नये जगहों में जाने से पहले मन में झिझक एवं भय रहता। इसके बाद वर्ष 2000 माइक्रोप्लानर के लिए साक्षात्कार दी। चयन होने के बाद 1 वर्ष तक उस काम को किया। काम के दौरान गांव का सर्वेक्षण करना, गांव का जारी नक्शा बनाना, आंकड़ा इकट्ठा करने के बाद ग्रामसभा बैठक कर शिक्षा समिति के पदाधिकारियों को सौंपना होता था। उस समय 100 रु. प्रतिदिन के हिसाब से पैसा का भुगतान मिलता था जिससे घर चलाने में राहत होने लगी। एक वर्ष तक इस काम को करने के बाद (बी.आर.पी.) ब्लॉक रिसोर्स पर्सन के पद पर योगदान किया एवं वर्ष 2007 तक उसमें काम किया तब मानदेय के रुप में 3000/- रुपये प्रतिमाह मिलता था। कुछ दिन बाद काम छूट गया और घर में बैठ गये। बच्चा छोटा

था। बच्चे की देखभाल के साथ-साथ मैं बकरी पालन एवं ट्यूशन का कार्य करने लगी क्योंकि बाहर जाकर कार्य करती, तो पति बोलते बच्चा प्यारा कि पैसा! जब बच्चा स्कूल जाने लगा तो मैंने 'जनकल्याण सेवा' संस्था के साथ जुड़कर कार्य करने लगी। फिर वह कार्य भी छूट गया और मैं बेकार घर में बैठ गयी।

वर्ष 2013 में 'संवाद' से जुड़ी और 'संवाद' से जोड़ने का माध्यम बी.एन. ओहदार बने। उन्होंने ही गुलाबचंद्र प्रजापति से हमें मिलवाया और नियुक्ति प्रक्रिया के बाद मैं 'संवाद' से जुड़कर कार्य करने लगी। शुरू-शुरू में कार्य करने में थोड़ी घबराहट होती थी परंतु साथियों से परिचय एवं उनके सहयोग से वह घबराहट भी कम होने लगी। 'संवाद' से जुड़ने के बाद ही मैंने जाहेरथान, जोरिया, ससनदरी जैसे शब्दों को सुना एवं उसका अर्थ जाने। नयी-नयी चीजों को जानने समझने से एक अलग आनंद की अनुभूति होती थी। पहले बाहर के लोगों से बात करने में डर लगता था अब डर गायब एवं झिझक खत्म हो गयी है। कोई भी व्यक्ति हो कहीं का भी हो, उनसे बेहिचक परिचय लेते हैं और बातचीत भी करते हैं। पहले घर से अकेले निकलने में डर लगता था। अब हिम्मत बढ़ गयी है। दिन क्या रात में भी अकेले सफर कर लेती हूं।

क्षेत्र में कार्य करने से आपसी संपर्क बढ़ा है। पहले गांव जाती थी तो लोग देखते ही घर के अंदर चले जाते थे परंतु अब देखते ही जोहार दी कहते हैं और धीरे-धीरे सभी महिला पुरुष इकट्ठा हो जाते हैं। गांव की समस्याओं पर चर्चा करते हैं। अब तो बाहर के कार्यक्रमों में भी यदि गांव वालों को जाने बोलते हैं तो वे तैयार हो जाते हैं। अपने कार्य के दम पर मैं क्षेत्र के लोगों का विश्वास जीत पाने में सफल हुई हूं।

जब लोगों का विश्वास प्राप्त होता है तो अपने अंदर नयी ऊर्जा का संचार होता है और कोई भी व्यक्ति दुगुने जोश के साथ कार्य करता है। उसके अंदर आत्मविश्वास आता है कि वह भी कुछ कर सकता है। मेरा भी आत्मविश्वास बढ़ा है। महिलाओं को संगठित कर एवं उनको भी जागरूक करती हूं। उन्हें उनके अधिकारों की बात बताती हूं। जब महिलाएं खुलकर अपनी बातों को रखती है तो मन खुशी से झूम उठता है।

सबसे बड़ा बदलाव जो मेरा हुआ है, पहले मैं अंधविश्वास को सच मानती थी। लगता था किसी के साथ नजर मिलाकर बात करूंगी तो नजर लग जायेगा और मैं बीमार पड़ जाऊंगी। अब ये सारी बातें मन से गायब हो गई है। छुआछूत को भी मानती थी। लोगों का छुआ खाना नहीं खाती थी, पानी नहीं पीती थी, अब बेझिझक

एवं बेधड़क सब के साथ मिल बैठकर खाना पीना बहुत अच्छा लगता है। अब किसी के घर में खा सकती हूं, पी सकती हूं।

कार्य करते-करते समय की पाबंद हो गयी हूं। समय पर गांव जाना, बैठक में समय से पहुंचना, समय पर बैठक संचालित करना, फिर इस बैठक का रिपोर्ट बनाकर समय पर कार्यालय और सुपरवाइजर को भेजना दर्शाता है कि मैं समय पर कार्य कर सकती हूँ। अब दूसरे व्यक्तियों की बातों को भी गंभीरतापूर्वक सुनती हूं, समझती हूं एवं आत्मसात भी करती हूं। अनुशासित भी हो गयी हूं।

ये जो सारे बदलाव आये हैं वह कहीं न कहीं साथियों के सहयोग के कारण ही संभव हो पाया है। कोई भी चीज जब समझ में नहीं आता है तो भैया एवं दीदी लोग से तुरंत पूछ लेती हूं। और वे लोग भी मेरे मन में उठते सवालों का हल ढूंढ़ने में मेरी मदद करते हैं। 'संवाद' के हर एक व्यक्ति ने मेरे मनोबल को बढ़ाया है, मुझे साथ दिया है। आज जो कुछ भी मैं कर पाती हूं या करने को सोचती हूं उन सबों में साथियों का भी हाथ है। मेरे स्व विकास की यात्रा में तमाम सहयोगी को धन्यवाद एवं जोहार!

❒❒

संघर्ष और रचना की हमारी यात्रा

- एनी टुडू

"सपना हर कोई देखता है पर कुछ लोग अपने सपने को साकार करने के लिए कोशिश करते हैं और सफल भी होते हैं पर कुछ लोग सपना तो देखते हैं पर उसे साकार करने के लिए कुछ प्रयत्न नहीं करते। पर मैंने जो सपने देखे उसे पूरा करने के लिए प्रयत्न भी किये। कभी-कभी बाधाएं भी आई पर उन बाधाओं को भी पार किया। तमाम विपरीत परिस्थितियों के बावजूद अपने सपने को कभी मरने नहीं दिया। संघर्ष करती रही। कभी सफल होती कभी असफल। पर अंतत: मैंने अपने सपने को पूरा किया। मेरे सपने, मेरी संघर्ष की कथा से आप परिचित होंगे और मेरी स्व विकास की यात्रा से भी।"

मेरा नाम एनी टुडू है मेरी माता का नाम फूलमनी मरांडी एवं पिता का नाम जगदीश टुडू है। मेरा जन्म दुमका जिले के लखीकुण्डी पंचायत अंतर्गत बाघमारा गांव में हुआ। हमलोग दो बहन एवं दो भाई हैं। पिताजी स्वास्थ्य विभाग में चर्तुथवर्गीय कर्मचारी थे पर उनकी शराब की लत के कारण अधिकांश पैसा उसी में खर्च हो जाता था। घर के खर्च के लिए पैसा या तो देते नहीं थे या कम देते थे। माँ किसी तरह कम पैसों से ही घर का खर्चा चलाती थी। आर्थिक तंगी के कारण मैं मैट्रिक तक की पढ़ाई ही कर पायी फिर कुछ दिन करीब तीन महीने सिलाई-कटाई का प्रशिक्षण प्राप्त की। प्रशिक्षण केन्द्र दूर होने के कारण प्रशिक्षण पूरी नहीं कर पायी। इसके बाद 6 महीने का नर्सिंग का कोर्स किया। उस समय हमारे क्षेत्र में 'मानवी' संस्था का कार्य चल रहा था उन्होंने मुझे अपने कार्य से जोड़ा। मैं महिलाओं का समूह बनाती, उनसे बचत करवाती और समूह को बैंक से जोड़ने का कार्य करती थी जिसके एवज में मुझे महीना

आठ सौ रूपये मिलते थे। यहां करीब आठ महीने कार्य करने के बाद मेरी शादी हो गई। ससुराल सुखी संपन्न परिवार था। ससुर प्राथमिक विद्यालय में प्रधानाध्यापक थे। पति भी ग्रेजुएट थे। उनका ज्यादा समय अपने पिताजी को यहां वहां ले जाने, लाने में बीतता था। जिस कारण उन्होंने कोई नौकरी नहीं ज्वाइन की। उनके पास आय का श्रोत नहीं रहने के कारण छोटी मोटी जरूरतों के लिए भी मुझे ससुर के आगे हाथ फैलाना पड़ता था यह मुझे अच्छा नहीं लगता था। मैं सोचती अगर मुझे कहीं छोटा मोटा काम भी मिल जाय तो मैं करूंगी। मेरा मायका बाघमारा गांव 'जुड़ाव' का कार्यक्षेत्र था उस समय वहां गांव स्तर की कार्यकर्त्ता के रुप में निर्मला मुर्मू कार्य करती थी। कुछ कार्यों में मैं उनको सहयोग करती थी जैसे बैठक के लिए महिलाओं को घर से बुलाना इत्यादि। उन्होंने एक दिन मुझसे कहा कि क्या तुम मेरी संस्था में काम करोगी? यदि करोगी तो प्रशिक्षण के लिए तुम्हें मधुपुर जाना पड़ेगा। अपने घरवालों से राय मशविरा कर लो फिर मुझे बता देना। मैंने अपने पति एवं माँ-बाबा से पूछकर उन्हें बता दिया कि मैं काम करने के लिए तैयार हूं। पर मुझे क्या काम करना पड़ेगा इसको लेकर मन में सवाल था। तब उन्होंने कहा कि प्रशिक्षण में जाने पर तुम्हें पता चल जायेगा कि क्या-क्या काम करना है? घरवालों को मैंने इसलिए भी मना लिया क्योंकि बचपन से ही मेरा सपना था कि मेरी जमीन हो, अपना घर हो, खूब सारा पैसा हो, और मैं किसी के अधीन न रहूं। पर मन में कहीं एक इच्छा यह भी दबी थी पैसा कमाने के साथ-साथ लोगों की सेवा भी कर सकूं। अक्टूबर 2004 को मैं 'जुड़ाव' से जुड़ी। निर्मला दी ने बोला तुम को मधुपुर जाना पड़ेगा। मैं अकेले ही दो दिवसीय प्रशिक्षण के लिए मधुपुर के लिए निकल गई। उस बैठक में वर्ल्ड सोशल फोरम का मूल्यांकन किया गया। काला डुमरिया में कार्यकर्त्ता क्षमतावर्द्धन कार्यशाला में हमें अपने कार्यों के बारे बताया गया। गांव जाकर लोगों से संपर्क करना है। संपर्क के लिए किन व्यक्तियों से सहयोग लेना है। ग्रामीणों के साथ कैसे बात करनी है, ग्रामसभा बैठकों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ानी है इत्यादि। मैं 'जुड़ाव' से जुड़कर ग्राम सभा सशक्तीकरण का कार्य करने लगी। 'जुड़ाव' से उस समय मानदेय के रूप में 2000 रुपये मिलते थे। इतना आर्थिक सहयोग भी मेरे लिए काफी संबल का काम किया। 2004 से 2009 तक 'जुड़ाव' में कार्य करने के दौरान मैंने अनेक कार्यशाला, बैठकों एवं प्रशिक्षण शिविर में भाग लिया जिससे मेरे आत्मविश्वास में बढ़ोत्तरी हुई। पहले किसी के सामने अपना नाम पता बताने में हिचकती थी, कहीं अकेले आ-जा नहीं सकती थी परंतु, 'जुड़ाव' से जुड़ने के बाद

मेरी क्षमता में विकास हुआ। मैं 'जुड़ाव' में कार्य के दौरान ही पहली बार ट्रेन पर चढ़ी। जब मैं दिल्ली, रांची एवं अन्य जगहों पर बैठक या प्रशिक्षण के लिए जाती तब आस पड़ोस के लोग बहुत ताना मारते थे कि यह दो दिन रात घर से बाहर रहती है इसका चाल चलन व्यवहार खराब हो गया है। लोग हरदम खरी-खोटी बात सुनाते थे। मेरे सास ससुर भी उनकी बातों को मानकर कहने लगे इसे घर में नहीं रखेंगे। घर का कुछ काम तो करती नहीं है केवल आवारा की तरह बाहर घूमते रहती है। उस समय मेरे पति ने काफी सहयोग किया। अपने मां पिताजी को समझाया कि 'जुड़ाव' अच्छी संस्था है। यह आदिवासी एवं वंचितों के हक अधिकार के लिए कार्य करती है। मेरे कार्य करने के लिए उन्होंने अपने मां पिताजी को राजी किया। आज यदि मैं काम कर पा रही हूं तो पति और मां के सहयोग के बल पर। मां मेरे बच्चे को पालने से लेकर अन्य कार्यों में भी मेरा सहयोग करती रही। 'जुड़ाव' हमेशा से ही लोगों के हक अधिकारों को लेकर कार्य करता था। वर्ष 2007 में काठीकुंड और शिकारीपाड़ा प्रखंड के 25 गांवों को उजाड़कर पावर प्लान्ट लगाने की बात जैसे ही ग्रामीणों को पता चली, ग्रामीण इसके विरोध में आ गये और धरना प्रदर्शन करने लगे। मैं भी ग्रामीणों को साथ देने के लिए धरना प्रदर्शन में शामिल होने लगी।

फिर वर्ष 2010 से 'संवाद' के साथ जुड़कर कार्य करने लगी। गांव समाज के लिए कार्य करने से मन को शांति मिली। क्षमता विकास कार्यशालाओं में भाग लेकर अपना क्षमता विकास करती और वहां से जो सीखकर आती उसे ग्रामीणों को बताती। ग्रामीणों का आधार कार्ड बनवाने, पेंशन दिलवाने, बैंक में खाता खुलवाने में मदद करती। ग्राम सभा बैठकों में महिला सक्रिय भागीदारी निभाये इसके लिए निरंतर उनके साथ संपर्क कर उन्हें जागरुक करने का कार्य करती रही। आपसी विवाद एवं पारिवारिक झगड़ों का निपटारा भी ग्रामसभा में हो इसका प्रयास करती हूं। आज अपने कार्य की बदौलत मेरी एक पहचान बनी है। विभिन्न मंचों से अपनी बातों को रखना, सभी जगह (राज्य या राज्य से बाहर) जाना यह संस्था के प्रयासों का ही परिणाम है। हाँ जितना कार्य मैं करती हूं उसका दस्तावेजीकरण ठीक ढंग से नहीं कर पा रही हूँ। वर्ष 2011 में मेरे पति का देहान्त हो गया। उस समय मेरा बेटा 5 वर्ष का था तब से लेकर आज तक बेटे को अकेले पाल रही हूं। एक अकेली माँ को बच्चा पालना कितना कष्टकारी है वह केवल एक माँ ही बता सकती है। इतना होने के बावजूद मैं अपनी जिम्मेवारी से कभी पीछे नहीं हटी। न बच्चे की पढ़ाई लिखाई को बाधित

होने दिया, न ही संस्था के कामों में कोताही की। पंचायत कार्यकर्त्ता से मैं अब फील्ड सुपरवाइजर बनकर पांच प्रखंडों में साथियों के साथ मिलकर कार्य कर रही हूं। 'संवाद' के पहल से बने राज्य ग्राम सभा फेडरेशन में राज्य संयोजिका के रुप में भी चुनी गई हूं। आज मेरी पहचान समाज में तो बनी ही है अन्य जगहों में भी अपनी पहचान बनाने में सफल हो रही हूं। इतना सब कुछ हो पाया है तो संस्था के संबल से ही। हाँ, परिवार का सहयोग भी मेरी यात्रा को आगे बढ़ाने में मदद किया है। आगे भी हर संभव कोशिश करती रहूँगी। मेरी मदद से यदि वंचितों को उनका हक अधिकार दिला सकूं तो ही मेरे जीवन की सार्थकता होगी।

❐❐

नदियों की तरह संघर्ष करती सरिता

- सरिता मुर्मू

"निर्णय करने की भूमिका में अभ्यास न होने के कारण महिलाओं को अपनी जिम्मेदारियां पूरी करने में काफी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। इस कमजोरी को दूर करने के लिए ऐसे उपायों की जरूरत है जो उनकी नेतृत्व क्षमता को मजबूत करने और सार्थक बनाने में सहायक हो। महिलाओं का विकास एवं उत्थान मात्र उसके स्वचेतना संपन्न होने से ही संभव है। पुरुष मानसिकता और उसके सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन आए बिना महिलाओं के स्वतंत्र समर्थ व्यक्तित्व को पुरुषों द्वारा स्वीकारे बिना सामाजिक कूपमंडूक परिदृश्य बदलनेवाला नहीं। आज मैं जब अपनी स्व की यात्रा को लिख रही हूँ तो लगता है कि अपने अंदर की कमजोरी को दूर कर बाधा या कठिनाईयों पर ध्यान न देकर अगर कार्य किया जाए तो मंजिल अवश्य मिलेगी। इसके लिए यह भी जरूरी है कि आपके साथ के सफर के सहयात्रियों के साथ आपका व्यवहार भी ठीक रखें।"

मैं सरिता मुर्मू निम्न वर्गीय परिवार से हूं। मेरे पिताजी एक छोटे किसान हैं। मुझसे छोटी मेरी एक बहन है। मेरे जन्म होने के पांच साल बाद ही मेरी माता इस दुनिया से गुजर गई। उस समय मैं 5 साल की थी और मेरी बहन डेढ़ वर्ष की थी। मां के गुजर जाने के बाद पिताजी अकेले परिवार चला रहे थे। परिवार में कुल 5 सदस्य थे। दादा, दादी, पिताजी और हम दोनों बहनें। एक समय ऐसा हुआ कि अकाल पड़ने के कारण धान की रोपाई नहीं हुई और खाने के लिए घर में कुछ नहीं था। हमलोग मकई का भात खाकर पले पढ़े। जब मैं 6 वर्ष की हुई तो विद्यालय जाना शुरू किया। हमलोग विद्यालय जाते तो थे ही, लेकिन साथ-साथ दूसरे के खेत में सहयोग के लिए काम

करने जाते थे। वहां पर काम करते-करते पढ़ाई के साथ-साथ काम भी सीखते थे और अपनी पढ़ाई के लिए खर्च भी निकालते थे। मैं छ: क्लास में अपना नामांकन कराना चाहती थी, लेकिन आर्थिक तंगी के कारण उस बार छ: क्लास में भर्ती नहीं हो पाई। एक साल घर पर ही रही फिर भी हार नहीं मानी। दूसरे साल खेतों में बहुत मेहनत की और पढ़ने के लिए फिर से विद्यालय में भर्ती हुई। मैंने घर का सारा काम, अपनी छोटी बहन की देखभाल सब कुछ करके विद्यालय जाती थी। जब मैं नवम् वर्ग में पहुंची तो मैंने भी कोचिंग क्लास करने की सोची, और मैंने विद्यालय में प्रधानाध्यापक को अपना स्थिति बताकर एक आवेदन लिखा, कि मैं क्लास में रोज उपस्थित नहीं रह पाऊंगी। प्रधानाध्यापक ने मेरे आवेदन को स्वीकार कर लिया। मैं सप्ताह में चार दिन विद्यालय में उपस्थित नहीं होती थी और उन दिनों मैं पोल फैक्ट्री में काम करने जाती थी। जब मैं मैंट्रिक की परीक्षा दे रही थी तभी मेरी दूसरी मां और उसका बेटा यानी मेरे भाई का देहान्त, मेरे गणित परीक्षा के दिन ही हुआ था। मुझे बहुत ही दु:ख हुआ कि मेरा एक ही भाई था। लेकिन पिताजी हिम्मत करके मेरे गांव के मामा के बेटा के साथ मुझे परीक्षा देने के लिए भेजा। इस तरह के घटना घटने के बावजूद भी मैं अच्छे नंबरों से उत्तीर्ण हुई। जब मैं उत्तीर्ण हुई थी तब मुझे भी मालूम नहीं था कि मैं उत्तीर्ण हुई हूं। क्योंकि मैं हर रोज अपने पिताजी का हाथ बंटाने के लिए फैक्ट्री पर काम करने जाती थी। फैक्ट्री की देख-रेख करने वाले मुंशी जी ने मुझसे पूछा कि तुम मैट्रिक की परीक्षा लिखी थी उर्त्तीण हुई कि नहीं। मैंने उत्तर दिया था कि नहीं पता तब उसी ने मेरे पिताजी को बता दिया कि मैं उत्तीर्ण हो गयी हूँ इससे मेरे पिताजी बहुत खुश हुए। मैंने संथालपरगना महाविद्यालय में नामांकन लिया। मैं साईकिल से आना-जाना करती थी।

शादी से पहले पढ़ाई के साथ-साथ मैं सिलाई भी सीखती थी। विद्यालय जाने से पहले सिलाई सीखने के लिए घर से सुबह 6:30 बजे निकलती थी। सिलाई सीखने के बाद मैं घर पर ही लोगों के कपड़े सिलाई करके अपना खुद का खर्च निकालती थी। अचानक मेरी शादी की बात घर पर चलने लगी थी, लेकिन मैंने खुद शादी करने से मना कर दिया था। मैंने मना कर दिया, तो मेरी बहन की शादी कर दी गई। मुझे बहुत दु:ख हुआ, क्योंकि मेरी बहन की उम्र उस समय बहुत कम थी। मैं रोज गांव से बाहर मैदान में जाकर बहुत रोती थी। मैंने हार न मानते हुए फिर से पढ़ाई करना शुरू किया। पढ़ाई शुरू करने के बाद जब मैं 12वीं क्लास में पहुंची तो मेरी तबीयत खराब हो गयी और घर से बाहर निकलना भी कठिन हो गया। मेरी कोई भी बीमारी, विद्यालय

के परीक्षा के समय ही इतनी कठिन मुसीबत लेकर आती कि मैं पढ़ना ही छोड़ देना चाहती थी। अनेक प्रकार की मुसीबत को झेलने के बाद भी मैंने हिम्मत नहीं छोड़ी और हार भी नहीं मानी। लेकिन घर वालों ने मेरी शादी तय किया और मेरी शादी करने के लिए ससुराल वालों में खुद मेरी सास ने मुझे पसंद किया और शादी का सारा खर्च भी उठाया। शादी तो हो गयी लेकिन ससुराल जाने के बाद मेरी पढ़ाई में बाधा आ गई। मेरा जीवन साथी तो अच्छा था लेकिन सास ने घर का सारा काम मेरे ऊपर डाल दिया। मैं घर का काम करने में इतनी व्यस्त हुई कि कब दिन होता था, कब रात होती थी पता नहीं चलता था। बाद में मैंने पढ़ाई छोड़ दी और घर के काम एवं खेती बाड़ी का काम करना शुरू किया। घर का काम करते - करते मेरे देवर की शादी का बोझ आ गया। दोनों देवर की शादी करने का खर्चा उठाकर शादी करवायी और अपनी जिम्मेदारी से मुक्त हो गयी। अब हम सब अपना जीवन यापन करने के लिए सब मिलकर खेती और घर का काम करते थे।

मैं थोड़ी पढ़ी - लिखी थी अत: हमारे गांव से एक किलोमीटर की दूरी पर स्थित प्राथमिक नर्सरी विद्यालय में नर्सरी से पंचम वर्ग तक विद्यालय में पढ़ाने लगी। विद्यालय में काम करने के दौरान मैंने कुछ पैसा जमा किया। इसी पैसे से मैंने एक सिलाई मशीन खरीद ली। विद्यालय से लौटने के बाद घर के सारे काम को खत्म करके मैं कपड़ा सिलाई करती थी।

2016 में मैं दिल्ली द्वारा संचालित संस्था का एक सिलाई सेंटर को चला रही थी। उसमें 20-22 किशोरियों को सिलाई का प्रशिक्षण दिया। उन लड़कियों और बहुओं में से कुछ लड़कियां मशीन नहीं खरीद पाने पर भी अपने हाथों से सिलाई कर बच्चों के लिए फ्रोक और पैंट बनाती हैं। यह देखकर मुझे बहुत अच्छा लगा कि गांव के गरीब महिलाओं के लिए कुछ काम किये। इस प्रकार अपने अन्दर आत्मविश्वास भी बढ़ा।

इस संस्था का काम समाप्त होने के कुछ दिन बाद फिर से ‘तेजस्वनी’ संस्था से जुड़कर किशोरियों के सशक्तीकरण पर कार्य करना शुरू किया। ‘तेजस्वनी’ संस्था में कई किशोरियों को शिक्षा से जोड़ पाये और छूटे हुए किशोरियों को रोजगार से जोड़ने पर कार्य करते थे। इस संस्था का कार्य भी मुझे अच्छा लगता था। उस संस्था में कार्य करते-करते मेरे अंदर शिक्षा के प्रति फिर से रूचि पैदा हुई। काम करते-करते आस-पास के गांव में भी मेरी जान-पहचान बढ़ गयी और घर से बाहर निकलने का मौका भी मिला। गांव के ग्रामीणों से भी अच्छा मेल-मिलाप रहा।

एक दिन 'संवाद' की कार्यकर्त्ता ऐनी टुडू ने हमारे गांव में प्रोग्राम रखा। जब ऐनी टुडू, सुनीता मुर्मू तथा श्रीकिशुन दादा हमारे गांव में आये और गांव का नक्शा बनाने को कहा। मुझे पहली बार गांव का नक्शा बनाने का मौका मिला था और मुझे मालूम नहीं था कि गांव का नक्शा कैसे बनाया जाता है। वहीं पर मैं गांव के नक्शे के बारे में सीखा। मैं मन ही मन सोचती थी कि मैं भी गांव के वंचित परिवार या गांव-गांव में काम करूं, क्योंकि पढ़ाई के समय से ही मेरा सपना था कि गांव के बीच काम करें।

फिर एक दिन 'संवाद' के कार्यकर्त्ता ऐनी टुडू ने हमारे गांव की सेविका के द्वारा हमसे फोन में बात करके 'संवाद' संस्था में काम करने को कहा। मैं कभी भी घर से बाहर काम करने के लिए नहीं निकली थी। क्योंकि घर से बाहर निकलने में मेरे पति मना करते थे। लेकिन मैं उन्हें समझा-बुझा कर पहली बार घर से बाहर 'संवाद' ऑफिस 52 बीघा मधुपुर, में ऐनी टुडू के साथ गयी थी। गाड़ी में मुझे बहुत दिक्कत होती थी क्योंकि मैं बहुत उल्टी करती थी लेकिन फिर भी मैंने ऑफिस में आकर 'संवाद' के कार्य को समझा और काम करने के लिए सहमत हुई। ऑफिस में सारा कुछ संपर्क बातचीत करके घर आ गये।

संस्था की यात्रा

1 अक्टूबर, 2018 से मैंने 'संवाद' संस्था में जुड़कर काम करना शुरू किया और गांव में जाकर ग्राम प्रधान से एवं ग्रामीणों से संपर्क करके सबसे पहले अपना परिचय दिया। बाद में धीरे-धीरे सभी ने मुझे जाना और परिचय का क्षेत्र बढ़ा। पहले मैं ग्रामसभा के बारे में उतनी अच्छी तरह से नहीं जानती थी। लेकिन संस्था में आकर ग्रामसभा के बारे में जानने सीखने का मौका मिला। गांव जाती तो थी लेकिन गांव वाले भी कुछ-कुछ सवाल करते थे, मैं उन सवालों का जवाब नहीं दे पाती थी तो अपनी सुपरवाईजर ऐनी टुडू को बुलाती थी। पहले काम तो करती थी लेकिन उतनी गहराई से काम करने का तरीका नहीं जानती थी। 'संवाद' संस्था के माध्यम से लोगों को जागरूक करने का काम शुरू किया। 3-4 महीना तक सिर्फ संपर्क और बातचीत करते-करते लोगों से मेरा अच्छा संबंध बना और मैं ग्रामीणों की मदद करने लगी। मुझे थोड़ा डर भी लगता था कि गांव के ग्राम प्रधान, गोडित, नायकी अन्य लोगों से बात कर पाऊंगी कि नहीं! लेकिन धीरे-धीरे काम करते-करते ग्राम प्रधान भी मेरी बातों को समझने लगे। मैंने सबसे पहले महिलाओं को सशक्त करने का कार्य शुरू किया। क्योंकि गांव

की महिलाएं ग्राम सभा बैठक में शामिल नहीं होती थी। महिलाओं को बैठक में आने की पाबंदी थी, और पुरुष लोग ही बैठक कर प्रस्ताव बनाकर गांव की महिलाओं से घर में जाकर हस्ताक्षर करवाते थे। लेकिन मैंने गांव के महिलाओं को ग्राम सभा बैठक में आने के लिए विस्तार से समझायी और अपना प्रस्ताव को रखने को भी समझायी।

गांव की महिलाएं अपने गांव के अंदर के आंगनबाड़ी केन्द्र में अपने बच्चों की सुरक्षा के लिए टीकाकरण भी नहीं कराती थीं। लेकिन मैंने सेविका से संपर्क किया, और टीकाकरण के दिन महिलाओं को टीकाकरण के बारे में समझाया कि गर्भवती माता एवं शिशु को क्यों टीकाकरण लेना या करवाना आवश्यक है। अब गांव की सभी गर्भवती महिलाएं अपने से जाकर आंगनबाड़ी में रजिस्ट्रेशन करा रहीं हैं। सबसे ज्यादा कुपोषित बच्चों की चिंता भी होती थी। कुपोषित बच्चों के माता-पिता से मिलकर सेविका, सहिया और मैं सबों को समझाती थी और मां तथा बच्चे को अस्पताल ले जाने में सहयोग भी करती थी।

संस्था से जुड़कर काम करते-करते मैं सरकारी योजनाओं को भी जानने लगी और लोगों को सरकारी योजना का लाभ दिलाने में सहयोग कर पा रही हूं। संस्था से जुड़कर संस्था के द्वारा सरकारी योजना, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, शिक्षा को लेकर गांव-गांव जाकर प्रचार-प्रसार करके लोगों को जागरूक करने के लिए काम करने का मौका मिला। संस्था में आकर जनप्रतिनिधि के साथ अपनी पहचान बढ़ाने में संस्था ने हमें सहयोग दिया है। संस्था में जुड़ने से मेरे अंदर क्षमता आई है कि मैं किसी भी पदाधिकारी से बात करने का साहस जुटा पाती हूं। संस्था में जुड़कर मेरे परिवार की आर्थिक स्थिति में भी सुधार हुआ है। संस्था से जुड़ने से पहले मैं अपने आप को बहुत ही कमजोर महसूस करती थी, लेकिन आज मुझे संस्था में काम करने से बहुत सारे कार्य करने की जानकारी प्राप्त हुई है।

पहले भी दूसरी संस्थाओं में कार्य करती थी, लेकिन उतनी जानकारी प्राप्त नहीं हुई थी जितनी कि 'संवाद' में जुड़ने से प्राप्त हुई। संस्था से जुड़ने से मुझे दूर-दूर तक सफर करने का मौका मिला, तथा अन्य जिलों के लोगों से मिलने, बातें करने और जानने का मौका मिला। एक-दूसरे के साथ बातचीत करने से और अच्छा काम करने का मौका (सीख) मिला। संस्था से जुड़ने या काम करने से लोगों के बीच गांव में ग्रामीण तथा माझी हड़ाम, गोडेत, नायकी और अन्य लोगों के बीच भी काम करने का मौका मिला।

आज मुझे लगता है कि मेरा सपना पूरा होने लगा क्योंकि मैंने पढ़ाई के साथ-साथ अपने मन में जो मकसद रखा था कि मुझे समाज के अन्दर वंचित वर्गों के लिए काम करने का मौका मिले और मैं आज उसी जगह पर खड़ी हूं। मैंने अपना मकसद (सपना) तीन चीजों में रखा था- नर्स, टीचर या समाज सेवी। लेकिन मेरा सपना सभी चीजों में पूरा हुआ, मैंने सभी तरह के काम किये, लेकिन मैंने अंतिम में एक ही को चुना। वो है- संस्था। संस्था को इसलिए चुना कि इसके द्वारा मैं सभी वंचित लोगों की मदद कर सकती हूं। आज गांव के महिलाओं, पुरुषों एवं बच्चों के बीच कार्य करने में अच्छा लगता है क्योंकि अब कोई भी ग्रामीण सदस्य किसी भी जरूरत, आवेदन या कोई भी लाभ पाने के लिए मुझसे बाते करते हैं, और सलाह भी लेते हैं। मैं बेहिचक उनकी मदद करने को तैयार रहती हूं। जहां तक मैं कर सकती हूं करती हूं। आज मुझे गर्व है कि संस्था में काम करने से मुझे गांव के ग्रामीण 'दीदी' कहकर बातें करते हैं।

संस्था से जुड़कर शुरू से अभी तक आने-जाने में किसी भी तरह की दिक्कतें नहीं आयीं हैं। किसी भी गांव में जाती हूं तो वहां के लोग मुझे सम्मान देते हैं। कार्यक्षेत्र में एस.एच.जी. समूह की महिलाएं भी मुझे अपनी दिक्कतें बतलाती हैं, तो उसका भी समाधान करती हूं। उन्हें उनके रजिस्टर को लिखने में भी मैं सहयोग करती हूं। संस्था से जुड़कर मुझे बहुत सारे काम करने एवं सीखने का मौका मिला है और मुझे लगता है कि संस्था में जुड़े रहो तथा सारे कार्य को करते रहो और सीखते रहो।

समाज के लिए

आज मैं समाज के लिए बहुत कुछ करना चाहती हूं, जैसे कि गांव के जितने भी बेरोजगार हैं, उनको रोजगार से जोड़ने में मदद कर सकूं ताकि वे अपने परिवार की आर्थिक स्थिति में सुधार कर पायें। गांव की महिलाएं जो चौक-चौराहे पर हड़िया, शराब बेचती हैं, उससे मुक्त होने एवं दूसरा कार्य करने के लिये प्रेरित करना चाहती हूं क्योंकि इस तरह (दारू) शराब बेचने से महिलाओं का मान-सम्मान एवं इज्जत नीचे ही रहता है। उनके बच्चों एवं परिवार के मुखिया को इसके बारे में जागरूक करना चाहती हूं। समाज के लिए आदिवासियों को अपनी पहचान को बनाये रखने में मदद करूंगी। आज के दिन में गांव के युवक- युवतियों को अपनी परंपरागत संस्कृति को बनाये रखने में सहयोग करूंगी।

संस्था के द्वारा कार्य करने से गांव से पंचायत तक मेरी पहचान बढ़ी है। दूसरे प्रखण्ड के कुछ गांव में भी मेरी पहचान हो गई है। लेकिन समाज के अंदर कार्य करने के लिए मुझे और संघर्ष करना पड़ेगा। कोई जनप्रतिनिधि बनकर समाज में कार्य करने की मेरी कोशिश भी है, लेकिन उसके लिए मुझे गांव से पंचायत तक लोगों के बीच कार्य करना होगा। समाज में काम करना तो बहुत ही कठिन है लेकिन उस कठिनाई को ध्यान में न रखते हुए कार्य करने पर ही अपनी मंजिल तक पहुंच सकते हैं। इसलिए किसी तरह की ठोकर या परेशानी ग्रामीणों या परिवारों के द्वारा आने पर उससे ध्यान हटाकर सभी लोगों से अच्छा व्यवहार होने पर ही समाज में काम कर सकते हैं। संस्था में आने के बाद मेरे अन्दर की कमजोरी दूर हुई है। और 'संवाद' संस्था में काम करते-करते मेरे अंदर समाज के लिए काम करने के लिए एक नई प्रेरणा जागृत हुई है जो कि मैंने कभी सोचा नहीं था। संस्था में काम करते-करते मुझे अनुभव हुआ कि मुझे और नयी-नयी चीजों को जानने एवं उससे समाज हित में काम करने का मौका मिलेगा।

❒❒

अंधेरे को दूर भगाती मैं पूर्णिमा हूं!

- पूर्णिमा बिरुली

"आदिवासी समाज मूलत: खेती पर आधारित समाज रहा है। खेती के साथ-साथ इनकी आजीविका जंगल पर भी निर्भर है। इसलिए यह समाज श्रमनिष्ठ है। यहां श्रम का सम्मान है। कोई भी कार्य छोटा या बड़ा नहीं होता है। परंतु बाहरी समाज के प्रभाव के कारण मानसिकता में बदलाव आया है। कुछ कार्य को सम्मानजनक समझा जाता है। कुछ कार्य को करने में लोग हिचकिचाते हैं अर्थात शर्म महसूस करते हैं। आज की युवा पीढ़ी जो थोड़ा पढ़ लिख जाते हैं वे खेती किसानी को हेय दृष्टि से देखते हैं जबकि ऐसा नहीं है। खेती किसानी से भी आजीविका सम्मानजनक तरीके से चल सकती है, यह मैंने ससुराल आकर जाना समझा।"

मैं पूर्णिमा बिरुली पश्चिम सिंहभूम के तांतनगर प्रखंड के चिटीमिटी गांव की रहने वाली हूं। मेरा जन्म कोकचो गांव में एक 'हो' आदिवासी परिवार में हुआ। मेरी मां का नाम जोंगा कालुन्डिया एवं पिता का नाम मानकी कालुन्डिया है। मेरी प्राथमिक शिक्षा कोकचो गांव के स्कूल में हुई। इंटर की पढ़ाई चाईबासा से की। उसके बाद मेरी शादी हो गयी। मेरे पति किसान हैं। धान की खेती के साथ-साथ मत्स्यपालन, मुर्गीपालन करते हैं। उन्होंने फलदार वृक्ष भी लगाया है एवं जलावन हेतु पौधे भी लगाये हैं। वे एक छोटी सी दुकान भी चलाते थे। जब शादी होकर मैं ससुराल आई तो उस दुकान की देखरेख की जिम्मेवारी मुझे मिली। दुकान चलाने के साथ-साथ सब्जी बेचती, जलावन लकड़ी बेचती। आम इत्यादि फल को जब चाईबासा बाजार ले जाकर बेचना पड़ता तो मुझे बहुत हिचकिचाहट एवं शर्म महसूस होती थी। मायके में मैंने यह सब काम नहीं किया था। उस समय मेरे पति ने मुझे समझाया और सर्पोट किया

कि अपने काम को करने में क्या शर्माना। कोई भी काम छोटा या बड़ा नहीं होता। हां, गलत काम नहीं करो। हिम्मत से काम लो। परिवार के लिए मेहनत करना, पैसा कमाना कोई बुरी बात नहीं है। उस समय को जब याद करती हूं तो लगता है आर्थिक स्वावलंबन की राह में वह मेरी पहली सीढ़ी थी। जब मैं बाहर निकलने लगी तो गांव समाज को समझने लगी। पहले ग्रामसभा क्या है, यह नहीं जानती थी। धीरे-धीरे पति के सहयोग से आगे बढ़ने लगी। ग्रामसभा की बैठकों में जाने लगी। वहां के चर्चाओं में भाग लेने लगी और देश दुनिया की खबरों को जानने लगी। वर्ष 2016 की बात है। एक दिन एक दीदी मेरे घर आयी और बोली क्या तुम ग्राम सभा सशक्तीकरण का कार्य करोगी? मैंने उन्हें तुरंत हां कर दिया पर उसने कहा तुम्हारे परिवार वालों से भी बात करना जरूरी है। इसलिए तुम्हारे घर आऊंगी। दूसरे दिन वे लोग मेरे घर आये। मैंने अपने पति को इन सब बातों को पहले ही बता दिया था। उन्होंने भी कार्य के लिए हां बोल दिया। इसके बाद मैं बैठक के लिए मधुपुर पहुंची। बैठक में मुझे क्या कार्य करना है? कैसे करना है? इन सब बातों को जाना, समझा। बैठक से लौटने के पश्चात कार्य क्षेत्र में जाकर लोगों से संपर्क करने लगी। उनसे परिचय बढ़ाने लगी। फिर सभी के सहयोग से कार्य करने लगी। मैं लोगों को खासकर महिलाओं को ग्राम सभा बैठकों में सक्रिय भागीदारी निभाने के लिए उत्प्रेरित करती। अब तो महिलाएं बैठकों में आती हैं और अपनी बातों को रखती है। प्रस्ताव यदि ठीक रहा तो समर्थन या गलत लगा तो विरोध भी करती हैं। अब क्षेत्र की महिलाएं जागरूक हुई हैं। जागरूकता आने से वे संगठित होने लगी हैं और अपने गांव समाज की समस्याओं को सुलझाने भी लगी हैं।

मुझे संस्था में काम करना बहुत अच्छा लगता है। संस्था में कार्य करने पर पैसे के साथ-साथ सम्मान भी मिलता है। किसी को सर या मैडम नहीं बोलना पड़ता है। बड़ों को दादा या दीदी, छोटे एवं हमउम्र को नाम से पुकारते हैं। विभिन्न धर्म जाति के होते हुए भी सभी में एकता है। सब लोग 'जोहार' बोलकर एक दूसरे का अभिवादन करते हैं। संवाद संस्था द्वारा महिला सशक्तीकरण, ग्राम सभा सशक्तीकरण, टिकाऊ आजीविका, बाल अधिकार, आदिवासी संस्कृति एवं परंपरा के संरक्षण-संवर्द्धन का कार्य किया जाता है। किसानों को आगे बढ़ाने के लिए उन्हें प्रशिक्षित किया जाता है। कॉपरेटिव रजिस्ट्रेशन के दौरान मुझे बहुत सी नयी जानकारी मिली। सहकारिता विभाग चाईबासा बार-बार जाना पड़ा। अधिकारियों से बातचीत करना पड़ता था। इससे मेरे मन का झिझक टूटा। किसान लोग भी हमें बहुत सहयोग किये। अभी 105

सदस्यों का हमारा कॉपरेटिव बनकर तैयार है जिसके अंतर्गत हम धान, आलू का व्यवसाय कर रहे हैं।

संस्था से जुड़ने के बाद मेरे जीवन में बहुत परिवर्तन आया है। मैं पहले भी पैसा कमाती थी, परंतु उस समय मेरी पहचान नहीं थी। संस्था से जुड़ने के बाद गांव समाज में पहचान बनी। जानकारी एवं ज्ञान का विकास हुआ। आत्मविश्वास में बढ़ोत्तरी हुई। अब कहीं भी अकेले आ जा सकती हूं। किसी भी मंच से अपनी बातों को रख सकती हूं। परंतु महिला होने के नाते परिवार एवं बच्चों की जिम्मेदारी भी संभालनी पड़ती है, तब मन में सवाल उठता है कि महिलाओं के जिम्मे ही परिवार एवं बच्चों की जिम्मेवारी क्यों? एक घटना का जिक्र मैं यहां करना चाहूंगी। मधुपुर बैठक के दौरान मेरा बेटा जो उस समय दो साल का था। मेरे साथ ही मधुपुर आया था। बैठक समाप्ति के बाद हम कमरे में थे। बेटा खेल रहा था और मैं कपड़ा सुखाने के लिए आंगन के तरफ गयी थी तभी अचानक से बेटा ने मां कहकर मुझे पुकारा। जैसे ही मैंने उसे देखा तो मेरी चीख निकल पड़ी। मेरा बेटा का सिर बॉलकनी में फंसा हुआ था। मेरी चीख सुनकर अन्य साथी अपने-अपने कमरे से निकले और बेटा को निकलवाने की कोशिश करने लगे। मैं भी वहां पहुंच चुकी थी। सभी के सहयोग से बेटा सुरक्षित निकल गया। मैं सोचने लगी थोड़ी देर के लिए मैंने बेटा को छोड़ा तो यह घटना घटी। अगर कुछ बड़ी घटना घट जाती तो लोग मुझे ही जिम्मेवार मानते। हम जैसी हर महिलाओं को घर की छोटी छोटी जिम्मेवारी से लेकर बड़ी जिम्मेवारी को बहुत ही सावधानी के साथ करना पड़ता है। जिम्मेवारी निभाने में अगर हम सफल रहते हैं तो हमें वाहवाही तो नहीं मिलती है पर अगर थोड़ी सी भी चूक होती है तो लोगों की बातें सुननी पड़ती है। लोग ताने भी देते हैं। इन तानों और बातों से न मैं विचलित हुई और न ही मैंने हिम्मत हारी, बल्कि दोगुने जोश के साथ संस्था का कार्य करती रही।

मेरी इच्छा है कि आगे भी मैं संस्था का कार्य करती रहूं, अपने समाज को आगे बढ़ाती रहूं। महिला-पुरुष, किशोर-किशोरी, बड़े-बुजुर्ग सभी को जागरूक होना होगा। सभी के सम्मिलित प्रयास से अपनी भाषा, संस्कृति, परंपरा, रीति-रिवाज, प्रकृति एवं खेती को बचाना होगा। जल, जंगल और जमीन का संरक्षण संवर्द्धन करना होगा। जब ये सारी चीजें बचेंगी तभी हम बचेंगे और हमारा समाज एवं परिवार बचेगा। समाज एवं परिवार बचेगा तभी तो पर्यावरण एवं प्रकृति की हिफाजत होगी तथा श्रम को सम्मान मिलेगा।

❒❒

नई राहें मांगती हैं महिलाएं

- ललिता

"आज जब महिलाओं में साक्षरता की दर में 40 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, महिलाएं पहले से अधिक अपनी समस्याओं के प्रति जागरूक हुई हैं। वे घर की चाहरदीवारी से निकलकर बाहर के हर क्षेत्र में मुस्तैदी से अपनी पहचान बना रही हैं। अत: सिर्फ महिलाओं पर अत्याचार और शोषण की ही बात करते रहना कहां तक जायज है? यह सवाल अक्सर जागरूक महिलाओं द्वारा भी उठाया जाता रहा है। इस सवाल का उत्तर ढूढ़ने से पहले एक आंकड़े की ओर ध्यान देना जरूरी है। हम महानगरों और छोटे शहरों में रहनेवाली जिन कामकाजी महिलाओं की बात करते हैं उनकी संख्या पूरे भारत में केवल दो प्रतिशत है। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने या परिवार का खर्च खुद उठाने का सामर्थ्य रखनेवाली महिलाएं अपनी शर्तों पर जिंदगी बसर कर सकती हैं। पर अक्सर ऐसा देखा जाता है कि ऊंचे पदों पर कार्यरत महिलाएं भी अपने कार्यक्षेत्र के बड़े-बड़े फैसलों में निर्णायक भूमिका अदा करने में असमर्थ होती हैं। (जब तक कि वे खुद उस संस्था की मालिक या संचालक न हों) इन सभी में महिलाओं की भूमिका नहीं के बराबर दिखलाई पड़ती है। मेरी कहानी भी कुछ ऐसी ही है।"

सन् 90 के दशक की बात है, जब मैं घर पर ही रहकर काम करती थी। अर्थात् मैं एक घरेलू महिला थी। मैं यह सोचती थी कि मैं सही ढंग से कोई काम नहीं कर पाती हूं। उससे पहले मैं यह बता देना चाहती हूं कि मेरी शादी बहुत कम उम्र में हो गई थी। मेरा ससुराल का घर मिट्टी का था। मिट्टी का घर देखकर मेरी परेशानी और बढ़ गई थी। क्योंकि पर्व-त्योहारों से पहले उसे लीपना- पोतना, साफ-सफाई करना होता था।

इसके लिए घर के बाहर से पानी ढोकर लाना पड़ता था। मैं खाना बनाने नहीं जानती थी पर मेरी सास मेरे कामों में बहुत मदद करती थी। खाना बनाने, घर की साफ-सफाई करने इत्यादि के लिए भी बाहर से पानी लाना पड़ता था। मेरी ननद और देवर बाहर कुएं से पानी लाने में मदद करते थे। मेरे पति अधिकतर घर से बाहर रहते थे। जब वे घर आते तो मैं डर जाती थी। पति और ससुर खाने बैठते तो मन में डर लगा रहता कि खाना ठीक बना है या नहीं। नमक ज्यादा होने पर पति इसके लिए बोलते, पर ससुर हमेशा मेरा पक्ष लेते और कहते कि कहां नमक ज्यादा है। मैं संतुष्ट हो जाती।

देखते-देखते मेरे तीन बच्चे हो गए। दो बेटा और एक बेटी। फिर एक दिन मेरे मन में यह सवाल आया कि आखिर मेरे पति जाते कहां हैं और क्या काम करते हैं? जब मैं उनसे पूछती तो वो जवाब देते कि तुम्हें ज्यादा चिंता करने की जरूरत नहीं है। मेरी चिंता इसलिए भी बढ़ जाती क्योंकि मुझे बच्चों को अकेला ही देखना पड़ता। हालांकि घर में सास-ससुर के रहने से मुझे मदद मिल जाती थी। वे जब भी घर आते तो उनके साथ उनके दो-चार मित्र हमेशा होते। उन सबों के लिए भी खाना मुझे बनाना पड़ता। सभी लोग खाना खाते और चले जाते। थोड़ी-बहुत पढ़ी लिखी होने के बावजूद मुझे उन लोगों की बात समझ में नहीं आती कि वे आपस में किस विषय पर बात कर रहे हैं। एक दिन मेरी बेटी ने कहा- मां मैं टाइपिंग सीखना चाहती हूं। तो मैं असमंजस में पड़ गई क्योंकि मुझे पता नहीं था कि टाइपिंग कहां सीखाते हैं। मैं कभी घर से बाहर नहीं निकली थी। एक-दो दिन में लोगों से पता करने पर मालूम हुआ कि संस्था में कुछ लोग टाइपिंग सिखाते हैं। यहीं पर मुझे संस्था के बारे में जानने और समझने का मौका मिला। मुझे पता चला कि संस्था में लोग काम करने के लिए रखते भी हैं। घर से बाहर निकल कर काम करने के लिए जाने की इच्छा हुई। उसके बाद मैं एक परिचित संस्था वालों के पास गई तो वे मुझे एक फार्म देकर उसको भरकर आने को कहा। मैं फार्म भरना जानती नहीं थी, वहां के एक व्यक्ति ने मेरा फार्म भर दिया। फार्म लेकर मैं वहां के प्रशासकीय अधिकारियों के पास गई तो मुझे कुछ सवाल पूछकर रख लिया गया। मुझे ट्रेनिंग के लिए गांव जाना था। जब मैं यह बात अपने सास-ससुर को बतलाई तो वे लोग घर से बाहर मेरे काम करने पर राजी नहीं हुए। तब एक लड़की जो संस्था में कार्यरत थी, आकर मेरे सास-ससुर को समझाई तो वे मुझे गांव में काम करने के लिए भेजने को तैयार हो गए।

गांव में महिलाओं के साथ मीटिंग करते हुए मुझे बहुत कुछ सीखने को मिला।

गांव में मैंने छ: माह तक काम किया। गांव में रहने के बाद मैं घर आई और घर के काम-काज में मन लगाने लगी, पर मेरा मन हमेशा मुझे घर से बाहर काम करने के लिए प्रेरित करता। दूसरे संस्था में काम करते हुए मुझे लगा कि खुद की एक संस्था बनाई जाए जिसमें महिलाओं का एक संगठन हो। पर मेरे बच्चे इतने बड़े नहीं हुए थे कि उन्हें छोड़कर अपना पूरा समय संस्था में लगाया जाए। क्योंकि एक संस्था को खड़ा करने के लिए अपना अधिकांश समय उसके कार्य योजना और कार्य पद्धतियों की शुरूआत को लेकर होती है। अत: कुछ लोगों के सहयोग से बनी संस्था में मैंने ऐसे लोगों को सदस्य बनाया जो मेरे कामों में मेरी भरपूर मदद करते और मुझे सही दिशा दिखाते ताकि संस्था सिर्फ बनाने के लिए ही नहीं हो पर उसमें प्रोजेक्ट आते रहें। संस्था में काम करते हुए जब भी मैं गांव जाती तो जाने के लिए मुझे काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ता। जैसे कि संस्था के किसी साइकिल चलानेवाले या मोटरसाइकिल वाले से कहना पड़ता कि मुझे गांव तक छोड़ दीजिए। लोगों से बार-बार मिन्नत करना पड़ता। अत: मैंने तय किया साइकिल चलाना सीखना होगा। एक सहयोगी ने मुझे साइकिल चलाना सिखा दिया। इससे मुझे गांवों तक जाने में आसानी हुई। फिर मैंने गांव की महिलाओं और लड़कियों को भी साइकिल चलाना सिखा दिया। इस संस्था में साथियों के साथ कुछ वाद-विवाद होने के बाद मैंने उस संस्था को छोड़ दिया।

पारिवारिक माहौल संस्थागत होने के कारण एक बार फिर किसी संस्था से जुड़ने का मन बनाया। मैं 'जुड़ाव' संस्था से जुड़ गई। पर वहां भी मैं नहीं रह सकी। संस्थागत कार्यों में धीरे-धीरे बदलाव आने लगे थे। कार्य करने के तरीके, उसके कार्य का रिजल्ट इत्यादि मापना कोई आसान काम नहीं था। उस पर दाता संस्थाओं की बार-बार रिजल्ट की मांग बेहद कठिन प्रक्रिया थी। मुझे लगा कि मैं यहां भी टिक नहीं पाऊंगी। चूंकि मैं ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं हूं अत: मुझे दूसरी जगह (जैसे सरकारी क्षेत्र) में नौकरी मिलना संभव नहीं था। अत: यहीं पर रहकर फिर से गांव जाने का काम शुरू किया। गांव की महिलाओं को संगठित करना, महिला समूह बनाना, बैकों से महिलाओं के समूह को लोन दिलवाने आदि का काम करती रही। संस्था द्वारा चलाये जा रहे रैली, धरना, सम्मेलन इत्यादि में भाग लेना मुझे अच्छा लगता था। 'संवाद' से जुड़ने से पहले भी गांव जाती थी। अब भी गांव जाती हूं। एस.एच.जी. से जुड़ी महिलाओं के साथ उनके घरों में मारपीट या घरेलू हिंसा से संबंधित कोई घटना होती तो गांव में बैठक कर गांव वालों से ही फैसला करवाती हूं। मेरा महिला समूह शहर में भी है और पंचायत

में भी। 5 महिला समूह को दुकान खोलने के लिए प्रेरित किया। एक महिला समूह की महिलाओं को गांव में ही राशन वितरण की दुकान खुलवाने में मदद की।

मेरी संघर्ष यात्रा में मैं स्वयं अपनी अस्तित्व बचाये रखने की लड़ाई लड़ने के साथ-साथ औरों की संघर्ष यात्रा में मददगार बनती हूँ। अभी तक समाज की मान्यता है कि महिला को घर से बाहर नहीं निकलना चाहिए तो कभी-कभी महिला चाहकर भी अपने लिए कोई सवाल नहीं उठा पाती है। वह घर परिवार की समस्याओं में उलझी और सबों की सलामती में ही अपनी सार्थकता महसूस करती है। पर अब इसमें सकारात्मक बदलाव आ रहा है। महिलायें अपनी पहचान की लड़ाई भी लड़ रही है और प्रगति और विकास के नये रास्ते भी तलाश रही है।

❐❐

शिक्षा आगे की राह को सुगम बनाती है

- सागोरी हेम्ब्रम

"अधिकांश माता-पिता अपनी बेटी का विवाह करने के बाद अपने को जिम्मेदारी से मुक्त समझते हैं। जिस लड़की के हाथ में अपने पैरों पर खड़े होने लायक शिक्षा की डिग्री भी नहीं, मां-बाप के घर की छत पर आसरा भी नहीं, उसके लिए यातना को यातना के रूप में न पहचानने के अलावा कोई रास्ता नहीं रहता। कई बार तो उसे यह अहसास भी नहीं होता कि जिंदगी इन स्थितियों से अलग और भी बेहतर हो सकती है। अपने पांव पर खड़े होने के लिए सबसे पहली जरूरत है शिक्षित होना। शिक्षा के द्वारा ही उसमें अपने आस-पास की परिस्थितियों का विश्लेषण और उसमें अपनी 'जगह' की पहचान करने की समझ विकसित होती है। इसलिए तमाम विपरीत परिस्थितियों के बावजूद भी मैंने पढ़ाई जारी रखी। मेरा मानना था कि शिक्षा से ही सही रास्ता मिलेगा एवं भविष्य में अपने परिवार एवं समाज के लिए कुछ कर पाऊँगी।"

मैं सागोरी हेम्ब्रम, बलवा गांव, मधुपुर की रहने वाली हूं। मेरे घर में मां-बाप के अलावा केवल एक भाई है। मुझे बचपन से ही पढ़ने की बहुत इच्छा थी। पर मैं सिर्फ नवीं क्लास तक ही पढ़ पाई, क्योंकि मेरे मां-पिताजी के पास पैसे का अभाव था। पैसे के अभाव के कारण हम दोनों भाई-बहन ज्यादा नहीं पढ़ पाए। स्कूली शिक्षा के दौरान भी मैंने बहुत कष्ट झेले।

मैं मड़ुवा का गट्ठा (भात), मड़ुवा का लड्डू आदि खाकर स्कूल जाती थी। वहीं पर दूसरी लड़कियां भात, दाल, सब्जी खाकर आती थी। जब वे मुझसे पूछती कि तुम क्या खाकर आई हो तो मुझे बहुत शर्म महसूस होता। मुझे यह बतलाना अच्छा नहीं लगता कि मैं म़ड़ुवा का गट्ठा खाकर आई हूं। हमलोगों के पास ज्यादा जमीन नहीं थीं,

पर जितनी जमीन थी उसी पर हम लोग खेती कर अपनी जीविका चलाते थे। हम दोनों भाई-बहन को नदी पार कर स्कूल जाना पड़ता था। बरसात के दिनों में हमलोगों को स्कूल जाना मुश्किल होता था। क्योंकि नदी पार करने का कोई साधन उपलब्ध नहीं था। मैं सोचती थी कि पढ़ने से सही रास्ता मिलेगा और भविष्य में परिवार के लिए आगे की दिशा में ले जाने की भी सोच सकते हैं। जैसे प्रत्येक परिवार शिक्षित होगा तो पूरा समाज के लोग भी शिक्षित होगें। जब मैं 18 वर्ष की थी उसी समय से परिवार एवं समाज के बारे में सोचने की शुरूआत हो गयी थी। परिवार स्वस्थ होगा, तो गांव, समाज के लोग भी स्वस्थ होंगे।

1990 में मेरी शादी हुई। पढ़ाई में मेरी रूचि के कारण शादी के बाद भी पढ़ाई जारी रखकर बोर्ड की परीक्षा पास की। परीक्षा पास करने के बाद मुझे घर से बाहर जाकर काम करने की इच्छा हुई। संयोग से 'प्रेरणा भारती' की कल्याणी मीणा दीदी से मेरी मुलाकात हो गई। वे हमारे गांव के ही एक पड़ोसी के घर आई हुईं थीं। वहीं पर बातचीत हुई कि मधुपुर के 'प्रेरणा भारती' के ऑफिस में आना। मुझको गांव के ही भीम दादा ने 'प्रेरणा भारती' का ऑफिस पहुंचाया। ऑफिस में 5 दिन का ट्रेनिंग में भाग लिया। संस्था से जुड़कर नई जानकारी और कई तरह की का ट्रेनिंग मिली। विभिन्न लोगों से पहचान बढ़ी। शुरू में मुझे 150 रुपया मिलता था, जो उस समय के हिसाब से ठीक था। संस्था में जुड़कर खुशी हुई। संस्था द्वारा ही मुझे एक राज्य से दूसरे राज्य में जाने का मौका मिला। इससे मुझमें हिम्मत बढ़ी कि मैं बाहर जा सकती हूं। उसके साथ-साथ संस्था से अपने हाथ में पैसा मिलने लगा, तो खुशी और भी दोगुनी हो गयी।

मुझे लगता है कि गांव, समाज की बेहतरी के लिए संस्था की ओर से जो काम दिया जाता है, उस काम को करने में कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए। इसके लिये जरूरी यह है कि आपको समाज के लोगों के साथ अपने परिवार जैसे रिश्ता बनाना पड़ता है। तभी गांव, समाज में मिल-जुलकर रह सकते हैं। मुझे काम करने में दिक्कत नहीं होती है। समाज के महिला-पुरूष के साथ लगता है कि मैं अपने परिवार के साथ ही हूं। जिन गांवों में मैं काम करती हूं वहां पहले महिलाएं घूंघट लिये रहती थीं, पर अब वे घर से बाहर निकल रही हैं।

महिला जब काम के लिए बाहर निकलती है तो उसे कई स्तरों पर संघर्ष करना होता है। कई बार सिर्फ बहादुरी से काम नहीं चलता। विचार के स्तर पर भी लड़ना

होता है, क्योंकि लोगों के अपने-अपने तर्क होते है। बाहरी चीजों से लड़ा जा सकता है, उनसे मुक्ति पायी जा सकती है। जैसे अंधेरे का निराकरण अंधेरे से लड़ना नहीं, बल्कि रोशनी की तलाश करना है। वह रोशनी शिक्षा और आत्मज्ञान है। यही एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से हर इंसान अपनी लड़ाई खुद लड़ने और अपना अंधेरा खुद दूर करने की ताकत पाता है। शिक्षित हो जाने पर दूसरों को हमारा जिम्मा लेने की जरूरत नहीं रहती है। 'सम्मान का संघर्ष' एक महिला के लिए कभी खत्म न होनेवाला संघर्ष है। समाज के भीतर अपने लिए उचित स्थान प्राप्त करने हेतु उसे भीषण यातनाओं से गुजरना पड़ता है। पर संस्था में कार्य करते रहने से मेरे अंदर आत्मविश्वास आया और संघर्ष करने का जज्बा भी। अपने जज्बे के कारण हर बाधा एवं चुनौतियों को पार करते हुए आज एक मुकाम पर पहुँची है और समाज में अपना एक सम्मानजनक स्थान बना पायी हूँ।

❑❑

धैर्य बनाए रखिए, हार के आगे जीत है

-फातिमा

"हारने और हार मान लेने में बहुत अंतर है। जीवन में वही लोग सफल होते हैं जो हार से घबराते नहीं, उसे खुशी खुशी गले लगाते हैं। हार से सीख लेकर आगे के रास्ते को सुगम बनाते हैं और कोशिश जारी रखते हैं। सफलता उसके कदम जरूर चूमती हैं। जो लोग यह मान लेते हैं कि मैं हार गया हूं/गयी हूं वे अपनी मंजिल तक पहुंच ही नहीं पाते बल्कि मंजिल तक पहुंचने से पहले ही टूट कर बिखर जाते हैं। चाहे कोई भी संकट या विपदा आयें हमें धैर्यपूर्वक उसका सामना करना चाहिए। हार से घबराकर अगर हम कार्य करना ही छोड़ देंगे तो हमें जीत कैसे मिलेगी। मेरे भी जीवन में काफी उतार चढ़ाव आये परंतु मैंने उससे हार नहीं मानी बल्कि डटकर उसका मुकाबला किया। और आज एक मुकाम पर पहुंची हूं। तमाम झंझावातों के बीच भी मैंने अपने सफर को जारी रखा। मेरे निजी जीवन के उन अनसुलझे पहलुओं से आप वाकिफ होंगे जब आप मेरे जीवन की यात्रा को पढ़ेंगे उससे रू-ब-रू होंगे।"

मैं फातिमा शमीम अंसारी, कोडरमा जिले के डोमचांच प्रखंड में एक छोटा सा गांव है नावाडीह, वहां की निवासी हूं। मेरा बचपन बहुत ही अच्छा बीता क्योंकि मेरे अब्बू नौकरी करते थे। वहीं हमलोग सब साथ रहते थे। शादी ससुराल, जात-पात, दुनियादारी से मैं अनभिज्ञ थी। 16 साल की उम्र में मेरी शादी हो गयी। हमें पता भी नहीं था कि ससुराल में कैसे रहना है, लोगों से कैसे बात करनी है, पर धीरे-धीरे सारी चीजें समझने लगी, मेरे दो बच्चे भी हो गये थे। मेरे पति की मुंबई में नौकरी थी। वे हम सबों (मैं और मेरे बच्चे) को मुंबई ले आये। पति एवं बच्चों के साथ मैं काफी खुशी से रह रही थी। गांव के माहौल एवं शहर के माहौल में काफी फर्क था। कहीं आने जाने

पर पाबंदी नहीं, न ही कुछ पहनने पर रोक टोक। बच्चों की परवरिश भी अच्छे ढंग से चल रही थी, एक बच्चे को आगे बढ़ने के लिए जो चीजें चाहिए वे सारी चीजें हम उन्हें दे पा रहे थे कि अचानक से मेरे ऊपर पहाड़ टूट पड़ा। मेरे पति बीमार रहने लगे और अचानक से मुझे बताये बिना अस्पताल में भर्ती हो गये। जब मैं अस्पताल गयी तब पता चला कि उन्हें कैंसर है और उनका ऑपरेशन होने वाला है। मुंबई शहर में न कोई रिश्तेदार न ही कोई जान पहचान। मुझे तो कुछ समझ में नहीं आ रहा था। हमलोग जहां रहते थे वहां के लोग फरिश्ते बनकर आये। उन सबों की मदद से ऑपरेशन हो गया।

डॉक्टर ने आश्वासन दिया कि सब ठीक हो जायेगा। पांच दिन अस्पताल में रहने के बाद उन्हें घर ले आये। मुंबई जैसे बड़े शहर में अकेले आना-जाना कर मैं उनका देखभाल करती। घर में दो बच्चे भी थे उन्हें भी देखभाल करना पड़ता। मैं लगभग टूट सी गयी। अस्पताल आने जाने में बहुत कठिनाईयों का सामना करना पड़ता था। सुबह तो किसी तरह चली जाती थी पर शाम को बहुत कठिनाईयों का सामना करना पड़ता था। एक दिन जब मैं शाम को अस्पताल से लौट रही थी, एक कार वाले ने पूछा - ताई कहीं जाना है। मैंने उसे पता बताया। चूंकि गाड़ी नहीं मिलती थी। मैं गाड़ी में बैठ गई। मेरे गाड़ी में बैठते ही उसने गाड़ी का कांच बंद कर दिया। गाड़ी में सिर्फ ड्राइवर और मैं थी। मेरे पास पैसे भी थे। मुझे डर लगने लगा। जब मैं गाड़ी में बैठ रही थी मेरे पति मुझे देख लिये थे वे किसी का फोन मांग कर मुझे फोन किये और डांटने लगे। फोन आने पर ड्राइवर पूछने लगा किसका फोन था? पहले तो मुझे कुछ समझ में नहीं आया फिर बोली मेरे पति का फोन था। उनके दोस्त अस्पताल में भर्ती हैं तो पूछ रहे थे कि तुम देखकर लौटी कि नहीं तब ड्राइवर ने कहा- आप के पति कहां काम करते हैं? मैंने वहां थोड़ा समझदारी दिखायी और ड्राइवर को बताया पुलिस में हैं। फिर मेरे पति के दोस्त जो पुलिस में हैं उनका पता बता दिया। मैं बहुत डर रही थी कि अचानक से ड्राइवर ने गाड़ी का शीशा नीचे किया और बोला ताई मुझे कुछ पैसा दो मेरी बेटी अस्पताल में भर्ती है। पहले मुझे लगा कि ज्यादा पैसा दे दूं परन्तु यह भी भय था कि अगर मैं पैसा निकालूं तो यह सारे पैसे देख लेगा। मेरे पास अलग से कुछ पैसे थे उसे ड्राइवर को दिया। वह ज्यादा पैसा मांग रहा था पर मैंने नहीं दिया। फिर वह मुझे मेरे बताये पते पर छोड़ा। मैं बार-बार अल्लाह का शुक्रिया अदा करती कि आज आपने मुझे बचा लिया। मेरे पैसे भी जाते और मेरे साथ भी कुछ अनहोनी हो सकती थी। किसी तरह

पति को फोन किये कि मैं ठीक से पहुंच गयी हूं। घर पहुंचकर मैं रोये जा रही थी। बच्चे भी घबराकर पूछ रहे थे मम्मी क्या हुआ पर मैं उन्हें क्या जवाब देती। किसी तरह अपने मन को शांत किया।

पति के इलाज में काफी पैसे खर्च हो गये पर मन में खुशी थी कि पति ठीक हो रहे हैं। दवा चलता रहा। कुछ दिन बाद जब डॉक्टर के पास फिर से चेकअप के लिए गये तब डॉक्टर ने बीमारी की गंभीरता के बारे बताया। उन्होंने कहा कि ऑपरेशन होने के बाद भी सुई और केमो चलता रहेगा। दवाई तो आजीवन लेनी पड़ेगी। चार केमो तो ठीक ठाक हुआ दो केमो बचा था कि इनकी तबीयत फिर से खराब हो गई। मैं सोच में पड़ गई कि इनका इलाज कैसे करवाऊंगी। गांव वाले और रिश्तेदार बोलने लगे गांव चले आओ पर मैं गावं नहीं गयी। मेरे भैया जो नागपुर में रहते थे उन्होंने फोन किया और कहा कि यहां आ जाओ उनका इलाज यहां कराते हैं। उनको लेकर भाई के यहां नागपुर पहुंची, वहां भी इलाज चला पर स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ। बच्चे मायूस थे। मैं भी हताश थी पर मुझे खुदा पर भरोसा था। फिर पति के कहने पर मैं वापस उन्हें लेकर पूना चली आई। उनके साथ काम करने वाले लोगों ने पैसा इकट्ठा कर उनका इलाज करवाये, परंतु दिनोंदिन उनकी तबियत सुधरने की बजाय बिगड़ती गयी। उन्हें भी शायद आभास हो गया था कि मैं ज्यादा दिन नहीं बचूंगा। उन्होंने कहा कि मुझे ले चलो। मुझे अपने माता-पिता, भाई-बहनों से मिलना है। फिर हम सब गांव चले आये। गांव वालों ने सुझाव दिया कि इनके हिस्से की जमीन बेचकर इनका इलाज कोलकाता में कराओ ये ठीक हो जायेगा। पर मेरे देवर नहीं माने वे बोले भैया अब बचेंगे नहीं तो जमीन क्यों बेचे? अंतत: बीमारी से जूझते-जूझते मेरे पति का देहान्त 26 सितंबर 2016 को हो गया। उनके इंतकाल से तो मैं टूट गई कि अब क्या होगा? फिर बच्चों को देखकर लगा अगर मैं टूट गई तो इनका क्या होगा? इनके लिए मुझे हर हाल में जीना है। दो महीने ससुराल में गुजारने के बाद वापस पूना गई इस आस में कि मेरे पति के कार्यालय से कुछ पैसा मिलेगा पर वहां भी कुछ नहीं मिला। यूनियन वाले बोले केस लड़ रहे हैं जीतने पर पैसा मिलेगा। पूना जैसे शहर में बिना कोई आर्थिक उपार्जन के मैं बच्चों को कैसे पालती? ससुर से बात करने के बाद वापस ससुराल आ गई। कुछ दिनों तक तो सब ठीक रहा। बाद में सब कहने लगे हमलोग तुमसबों को नहीं पाल सकते। बेटा ही नहीं है तो तुम सबों से हमारा क्या रिश्ता? मैंने उनलोगों से कहा कि अब तो मुझे घर से निकलना होगा क्योंकि मुझे बच्चों को पालना है और मैंने ठान लिया चाहे

जो भी हो जाय मैं बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलाऊंगी। मैंने कह तो दिया पर काफी उधेड़बुन में थी। इसके पहले कुछ करना तो दूर घर से निकली भी नहीं थी, पर सारी शंका, सारी दुविधाओं को पीछे पछाड़कर मैं संघर्ष के रास्ते पर निकल पड़ी। बेटा को मेरी मां के पास छोड़ दिये। एक दिन काम के सिलसिले में मैं मुखिया से मिलने गई तो संयोग से वहां एक टीचर मिली उन्होंने जब मेरी स्थिति को जाना तो कहने लगी क्या आप विद्यालय में पढ़ा सकती हो? थोड़ी देर तो मैं चुप रही क्योंकि मैं तो सिर्फ 10वीं क्लास तक की पढ़ाई की थी। फिर हिम्मत बटोरकर उन्हें हां कर दिया। विद्यालय घर से काफी दूर था। आने-जाने में काफी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता था। पर मैंने हार नहीं मानी क्योंकि मुझे कुछ करना था। बच्चों को पालना था। तमाम मुसीबतों को धत्ता बताते हुए स्कूल में पढ़ाने लगी। डेढ़ हजार रूपये मिलते थे उसी से मेरा और बेटी का गुजारा चलता था। स्कूल में पढ़ाने के कारण मेरे परिचय का दायरा बढ़ा। अब मैं बच्चों को ट्यूशन भी पढ़ाने लगी। सिलाई का काम भी करने लगी। इसके बाद बेटी को अंग्रेजी माध्यम के स्कूल में पढ़ाने लगी क्योंकि उसकी इच्छा थी कि वह अंग्रेजी स्कूल से ही पढ़े। फीस ज्यादा होने के कारण मैंने जेवर बेचकर भी उसकी पढ़ाई को जारी रखा कि मेरे कारण उसका भविष्य खराब न हो। फिर मेरा परिचय 'संग्राम' संस्था से हुआ। उनका भी कुछ काम मैंने किया। फिर उनके मार्फत ही 'संवाद' से परिचय हुआ। जब 'संवाद' से जुड़ी तो मुझे कुछ भी नहीं आता था पर साथियों ने काफी मदद की। रिर्पोट लिखने से लेकर गांव में काम करने के तरीके के बारे सब उन्होंने ही मुझे सिखाया। साथियों के सहयोग से मैं कार्य करने लगी और नित नयी चीजें सीखने लगी। शुरूआत में क्षेत्र में कार्य करने में थोड़ी कठिनाई आई। मेरा धर्म एवं पहनावा को लेकर लोग टिप्पणी करते पर धीरे-धीरे काम की बदौलत मैंने उनके विश्वास को जीता। आज क्षेत्र में मेरी पहचान है, लोग इज्जत करते हैं। महिलाएं खुल कर अपनी समस्याओं को रखती हैं और मैं यथासंभव उनके समस्या को सुलझाने में मदद करती हूं। पर कहते हैं आप अच्छे से रहो यह किसी को सुहाता नहीं है। अब मेरे ससुराल वाले मुझे घर से निकालने पर आमादा हो गये। बीच-बीच में मेरा देवर मेरा सामान भी फेंक देता था क्योंकि उसने चालाकी से मां-बाप, बहन से घर लिखवा लिया था। यहां तक कि मेरे ससुराल वाले मेरे चरित्र पर भी उंगली उठाने लगे कि कहां जाती है क्या करती है? कुछ अता पता नहीं रहता है। मैं धैर्यपूर्वक इन सबों का सामना करती रही। मैंने अपनी बात गांव वालों को समक्ष रखी कि अभी तो किसी तरह अपना गुजारा कर

रही हूं घर कैसे बनाऊंगी? गांव वालों के समझाने पर उन्होंने कुछ दिनों की मोहलत दी। उस समय तक मेरा बेटा इंटर की पढ़ाई पूरी कर चुका था और हमारे साथ ही रहने लगा था। मैं जब रोती बच्चे ढांढस बंधाते मम्मी हिम्मत मत हारो सब ठीक हो जायेगा। हम सभी मेहनत करेंगे और घर बनायेंगे। बेटा पढ़ाई के साथ-साथ पार्ट टाइम जॉब करने लगा। वक्त ने करवट लिया और मेरे भी दिन बदले। मैंने अपना घर बनाना शुरु किया और आज मेरा घर बन चुका है जिसमें हम तीनों साथ रहते हैं। बेटा भी पढ़ाई कर रहा है और बेटी वकालत की शिक्षा प्राप्त कर रही है। हां पर मैं समाज से कुछ कहना चाहूंगी कि समाज द्वारा लड़कियों या महिलाओं पर जो बंदिशे लगायी जाती हैं वह बंद हो। महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनाने के लिए उन्हें सहयोग करना चाहिए। जब आपके पास पैसा होता है तो परिवार एवं समाज आपकी इज्जत करता है। और बुरे वक्त में आप टूटकर बिखरते नहीं हैं। समय-समय की बात है जिन लोगों ने मुझे घर से निकाला, मेरे चरित्र पर लांछन लगाया आज वही लोग मुझे सम्मान देते हैं, मेरी राय लेते हैं पर यह सब संभव हो पाया 'संवाद' के कारण। 'संवाद' एक संस्था नहीं परिवार है। जहां न जात-पात, न अमीर-गरीब, न धर्म का भेदभाव है। सब मिलकर रहते हैं। एक दूसरे को सहयोग करते हैं। आज अगर फातिमा शमीम अंसारी से समाजसेवी फातिमा बनी तो वह 'संवाद' के कारण ही। 'संवाद' ने मुझे टूटकर बिखरने से बचाया, एक पहचान दी और साथ ही आर्थिक सहारा भी। 'संग्राम' संस्था ने मुझे 'संवाद' से मिलवाया इसके लिए उनको भी आभार। मेहनत, लगन और हिम्मत जिनके पास होती है मंजिल तक वह अवश्य पहुंचता है।

❐❐

अनेकता में एकता

- सुमित्रा हेम्ब्रोम

"मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज मनुष्यों के समूह से मिलकर बना होता है। समाज में विभिन्न वर्ग, जाति एवं धर्म के लोग रहते हैं। विचारधाराएं भी अलग होती हैं तो सोच भी अलग होती है। कुछ लोग सकारात्मक सोच वाले होते हैं तो कुछ नकारात्मक सोच वाले। इतनी भिन्नताओं के बावजूद लोगों में एकता, परस्परालंबन, सहजीविता, सामूहिकता एवं सहयोग की भावना होती है। समाज को इतनी गहराई से जानने एवं समझने का अवसर मुझे 'संवाद' से जुड़ने के बाद मिला। तो चल पड़ें हम भी मंजिल की खोज में।"

मैं सुमित्रा हेम्ब्रोम एक मध्यमवर्गीय किसान परिवार से ताल्लुक रखती हूं। मेरा जन्म धनबाद जिले के निरसा प्रखंड के एक छोटे से गांव पालुडीह में हुआ। मेरे परिवार में मां, पिता, दादी, बुआ और हम भाई बहन सब साथ रहते थे। पिताजी इंटरमीडिएट तक पढ़े थे, पर वे खेती किसानी ही करते थे। मेरे बड़े भाई की अचानक मृत्यु हो जाने के कारण मेरे नाना-नानी मेरे पूरे परिवार को धनबाद से जामताड़ा ले आये। हम सभी भाई-बहन वहीं बड़े हुए। हम सभी भाई-बहनों की शिक्षा जामताड़ा के एक मिशनरी स्कूल में हुई। नौकरी नहीं रहने के बावजूद भी मेरे पिताजी ने हम सभी भाई-बहनों को अच्छी शिक्षा एवं परवरिश दी। कभी किसी चीज की कमी महसूस नहीं होने दी। सब कुछ ठीक ठाक चल रहा था। मैंने अपना स्नातक भी पूरा कर लिया कि वक्त ने करवट बदला। पापा-मम्मी और मैं किसी काम से गोड्डा गये थे। जब वहां से वापस लौट रहे थे तो दुमका में पापा को अटैक आया उनका नस और मुंह खींचने लगा। वैसी स्थिति में ही आसाढ़ी पूजा के कारण वे निरसा अपना घर आये। इलाज के बावजूद

उन्हें लकवा मार गया। मम्मी को भी शुगर की बीमारी हो गयी। परिवार की आर्थिक व्यवस्था चरमराने लगी। मम्मी, पापा के दवाई का खर्च, हम भाई-बहनों के पढ़ाई का खर्च पूरा करने में काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा था। फिर मैं और मेरा भाई ट्यूशन पढ़ाने लगे, पर गांव में भी लोगों की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं होने के कारण पैसा समय पर नहीं मिलता था। पर दिन चलने लगा। ट्यूशन के साथ-साथ मैं सरकारी नौकरी की तैयारी भी करती रही। दारोगा एवं लोको पायलट की परीक्षा भी पास की। लोको पायलट में मेडिकल टेस्ट में छांट दी गई। वहीं दारोगा वाले दौड़ इत्यादि में सफल होने के बाद भी मेरिट लिस्ट में नाम नहीं आया। ये दो घटनायें झारखंड सरकार की व्यवस्था की पोल खोलती है। जो पैसा दे पाते हैं नौकरी उसकी ही होती है। अन्य सरकारी नौकरियों का भी यही हाल है। वेकेन्सी तो निकलती है, लोग फार्म भी भरते हैं, परीक्षा भी देते हैं, और जब परिणाम का वक्त आता है, तब परीक्षा रद्द हो जाती है। कभी नियोजन नीति तो कभी 1932 का खतियान, ये बहाना बनाकर सालों साल केस लड़ा जाता है। तब तक सरकारी नौकरी की उम्र की सीमा खत्म हो जाती है।

मैं भी नौकरी की तलाश में इधर-उधर भटक रही थी। मेरी ममेरी बहन बागदहा में 'संवाद' के साथ जुड़कर इंटरनेट साथी के रूप में कार्य कर रही थी। उसने ही मुझे 'संवाद' के बारे बताया कि चन्द्रदीपा पंचायत में एक पद खाली है यदि तुम करना चाहो तो बात कर सकते हैं। पैसों की जरूरत तो मुझे थी ही, मैंने तुरंत हां कर दिया। फिर 'संवाद' मधुपुर से मुझे फोन पर सूचना मिली कि लिखित परीक्षा एवं साक्षात्कार के लिए मधुपुर आना है। नियत तिथि एवं समय पर मैं मधुपुर पहुंची। मेरे जैसे कई और केंडिडेट भी थे। लिखित परीक्षा एवं मौखिक साक्षात्कार हुआ। और फिर मैं मई 2019 से 'संवाद' से जुड़कर क्षेत्रीय कार्यकर्त्ता के रूप में कार्य करने लगी।

'संवाद' से जुड़ने के पहले मुझे संस्था क्या है, क्या काम करती है, किसके लिए करती है इन सब बातों से अनजान थी। फिर बैठकों, शिविरों के माध्यम से संस्था के क्रिया कलापों से अवगत हुई। उनके लक्ष्य एवं उद्देश्य के बारे पता चला। क्षेत्र में काम क्या करना है, कैसे करना है, इन सारी चीजों को समझने लगी। संस्था से जुड़ने के बाद मेरी एक अलग पहचान बनी।

मिशनरी स्कूल में पढ़ने के फलस्वरूप मैं मदर टेरेसा से काफी प्रभावित थी। सेवा की भावना भी थी। मन में एक सोच थी कि हम भी समाज के बीच वैसे लोगों की सेवा करेंगे जिनका दुनिया में कोई नहीं है। स्कूल में भी एल.टी.एस. ग्रुप में थी जिसका अर्थ

था 'लीडरशिप ट्रेनिंग फॉर सरवाइवर'। मेरी यह सोच संस्था में जुड़ने के बाद और बलवती हो गई। संस्था से जुड़कर भी मैं वंचितों के लिए ही कार्य कर रही हूं। उनके हक अधिकार उन्हें मिले इसके लिए उन्हें जागरूक करती हूं।

हर संस्था के प्रशिक्षण देने की विधा अलग-अलग होती है। संवाद में जब कोई नये साथी आते हैं तो पुराने साथी उनको कामों में सहयोग एवं मार्गदर्शन करते हैं। कार्यशाला, प्रशिक्षण शिविरों में समूह चर्चा, सामूहिक अध्ययन इत्यादि के माध्यम से विषयवस्तु को समझाया जाता है। जो साथी अंतर्मुखी है उन्हें बोलने के लिए प्रेरित किया जाता है। सबको आगे बढ़ने का अवसर मिले इसका खास ध्यान रखा जाता है। त्रैमासिक बैठकों में हम सारे कार्यकर्त्ता अपने कार्यों का मूल्यांकन करते हैं। लक्ष्य से भटकने पर हमें उचित मार्गदर्शन दिया जाता है ताकि फिर से क्षेत्र में हम जोशो-खरोश के साथ काम कर सकें।

ग्राम सभा की समझ मेरे अंदर नहीं थी। संस्था के प्रशिक्षण के फलस्वरूप ग्राम सभा के बारे जानने का मौका मिला। ग्राम सभा फेडरेशन से जुड़ने का मौका मिला और वर्तमान में मैं ग्राम सभा फेडरेशन की सक्रिय सदस्य भी हूं।

सामाजिक क्षेत्र में काम करने का एक लाभ यह भी है। हमें प्रशिक्षणों के लिए नये-नये जगहों में भेजा जाता है। नयी जगहों में घूमने का मौका तो मिलता ही है साथ ही संपर्क का दायरा भी बढ़ता है और नयी-नयी चीजों की जानकारी भी मिलती है। चीजों को देखने के नये नजरिये का भी विकास होता है। धनबाद की होने के कारण मैथन डैम पहले भी गई थी पर इस बार जब साथियों के साथ गई तो डैम बनने की कहानी, लोगों का विस्थापन एवं संघर्ष का पता चला। अगर मैं दूसरी जगह नौकरी करती तो शायद इन चीजों से अनभिज्ञ रहती और समाज के इन पहलुओं को देखने का मेरा नजरिया कुछ अलग होता।

समाज परितर्वन का कार्य काफी चुनौती भरा है। आपको भिन्न-भिन्न तरह के लोगों से सामना करना पड़ सकता है। कुछ लोग आपके कामों की सराहना करेंगे तो कुछ टांग खींचने का कार्य भी करेंगे। समाज में नशापान है जिसके कारण महिलाओं पर हिंसा होती है। लैंगिक भेदभाव है, कुरीतियां है, कुप्रथायें हैं। पर मेरा मानना है कि अगर सच्चे मन से और प्रेम भाव से कार्य किया जाय तो सफलता एक दिन में तो नहीं, पर एक दिन अवश्य मिलेगी। अब लोग जागरूक हो रहे हैं और समाज में व्याप्त इन कुरीतियों, कुप्रथाओं एवं गलत मान्यताओं के खिलाफ आवाज उठा रहे हैं। कार्य करते

हुए स्व का विकास भी हुआ है। आत्मविश्वास बढ़ा है, चीजों को देखने का नजरिया बदला है। भय खत्म हुआ है। अब बेझिझक अपनी बातों को रख सकते हैं और सबसे बड़ी बात हुई है वह है समाज का विश्वास हम पर बना है। ग्रामीणों का सहयोग मिलता है एवं उनके साथ अपनापन का रिश्ता भी बना है।

अगर सब कुछ सामान्य चलता रहा तो आगे भी समाज के साथ जुड़कर कार्य करना चाहूंगी और समाज परिवर्तन की दिशा में मेरा प्रयास जारी रहेगा।

❒❒

इसलिए राह संघर्ष की हमने चुनी

-कल्पना कुंवर

"जिंदगी के टेढ़े- मेढ़े और उबड़-खाबड़ रास्ते पर चलना हर किसी के वश की बात नहीं है। क्योंकि ऐसे अनेक मौके आते हैं जब हमें लगता है कि हम सही दिशा में जा रहे हैं पर हम वहीं पर गोल-गोल घूम रहे होते हैं। लगता है जैसे चारों ओर अंधेरा छा गया हो। हमें दिखाई नहीं पड़ता कि रास्ता किधर से होकर जाना है। मेरे बचपन के शुरूआती दिन भी कुछ इसी प्रकार थे। न चाहते हुए भी पथरीली भूमि पर पांव रखकर चलना ही था तो चल पड़े हम भी मंजिल की खोज में ।"

मेरा जन्म महाराष्ट्र राज्य के वर्धा जिले में हुआ था। मेरे पिता रेलवे में कोयला ईंजन चलाने का काम करते थे। मेरी माता एक घरेलू महिला थी। हम कुल पांच भाई-बहन थे, जिसमें दो भाई और हम तीन बहनें थीं। मैं अपने परिवार में सबसे छोटी थी। मुझे याद है मेरे पिता का ट्रांसफर नागपुर हुआ था, लेकिन उन्हें मिर्गी की बीमारी हुई, जिसके कारण उन्हें नौकरी से बैठाया गया। पिताजी के नौकरी से बैठने के बाद मां के ऊपर पूरा पारिवारिक बोझ आ गया। काफी आर्थिक तंगी के दौर से गुजरना पड़ा। एक वक्त भूखे भी रहना पड़ता था। उस समय स्कूल का 60 पैसे का फीस भरना भी काफी मुश्किल था। मेरे भैया फीस नहीं भरने की वजह से स्कूल की परीक्षा नहीं दे पाते थे। किसी तरह घर के बड़े पिता के बच्चों का पुराना कपड़ा पहन कर दिन गुजर रहा था। स्कूल जाते समय कभी पैर में चप्पल नहीं, घर- बाहर एक ही कपड़ा था। केरोसिन तेल से जले दीये की रोशनी या सड़क पर जले लाईट में पढ़ाई करते थे। इसी समय पिता को फिर से नौकरी का कॉल आया, फिर वहां जाना पड़ा। उस समय उन्हें रेलवे हॉस्पीटल में नौकरी मिली। उन्हें मिर्गी की बीमारी थी अत: वह बैठकर काम करते। किसी तरह

मेरा नाम स्कूल में लिखा दिया गया और मैं मैट्रिक पास की। मैं पैसे के अभाव में नयी किताबें नहीं खरीद पाती, पुरानी किताब बाजार से आधे दाम में खरीद कर मैट्रिक तक पढ़ी। उसके बाद 11वीं क्लास में नाम लिखवाया और बी.कॉम. तक पढ़ी। पैसे के अभाव में बाहर से कोई भी ट्यूशन नहीं लगाई। पर किस्मत ने मेरा साथ नहीं दिया और उसी समय बीमारी की वजह से पिताजी का देहांत हो गया। पर तब तक दोनों बहन और दोनों भाई की शादी हो चुकी थी।

मां काफी कर्जे में थीं। मेरी शादी फुआ ने अजय जी के साथ कर दिया। मेरे ससुरजी महाराष्ट्र के पुलगांव में मिलिट्री में मेजर के पोस्ट में थे। रिटायर्ड होने के बाद सिवान (बिहार) चले आये। मैं और मेरे पति वहीं रह गये। मेरे पति शुरू में लारसन एन्ड टुरबो कंपनी में काम करते थे। उस समय इलेक्ट्रिक ट्रेनें नहीं चलती थीं। सिर्फ कोयला इंजन से चलने वाली ट्रेनें थीं। उनकी नौकरी स्थाई नहीं थीं। हर दो माह में जगह बदलनी पड़ती थी। उनके साथ मैं भंडरा, गोंदिया, डेहरी ऑन सोन, जपला और अन्य जगह घूमते-घूमते चितरंजन, बंगाल आ गयी। हमलोगों के साथ हमारी एक साल की बेटी भी थी। फिर चितरंजन से मेरे ससुर मुझे बिहार ले आये। बिहार में ससुराल के नियम थोड़े कठोर थे। वहां लोग पुराने रीति-रिवाजों के थे। बड़े लोगों के सामने घूंघट लेना पड़ता था, जो मेरे लिए थोड़ा कठिन था, क्योंकि मैं शहरी वातावरण में पली-बढ़ी थी। फिर भी मैं अपने आप को एडजेस्ट कर चल रही थी। लेकिन मैं वहां टिक नहीं पाई। एक चचेरे देवर के साथ मधुपुर अपने पति के पास आ गयी। वहां आने पर पता चला कि मेरे पति कर्ज में डूबे हुए हैं। मेरी शादी का सारा सामान लूट चुका था। एक बार फिर मैं गरीबी की जिंदगी जीने को मजबूर हो गई। मुझे एक बेटा भी हुआ। एक बार फिर घर की परिस्थिति के कारण मुझे काम के लिए बाहर निकलना पड़ा।

काम की तलाश करते हुए मैं 'प्रेरणा भारती' संस्था आयी, पर मुझे काम नहीं मिला। क्योंकि मैं खोरठा भाषा नहीं जानती थी। उन्होंने मुझसे पूछा था कि अगर मुझे संस्था के काम से अकेले बाहर भेजेंगे, तो क्या मैं जा पाऊंगी? मैंने कहा कि शुरू में किसी को साथ भेजना पड़ेगा, आदत होने पर मैं अकेले बाद में जाऊंगी। पर वे इसके लिए तैयार नहीं हुए। फिर मैं भीमराव अंबेदकर विकास समिति, चांदमारी, मधुपुर संस्था में गई, वहां पर काम तो मिला, पर पैसा नहीं के बराबर मिल रहा था। उस समय मैं अपने दोनों बच्चों को घर में ताला लगाकर काम के लिए जाती थी। लेकिन पैसे की अच्छी व्यवस्था नहीं होने के कारण मैंने वहां काम छोड़ दिया। इसी बीच 19 जुलाई

1997 को 'ग्राम विकास फाउन्डेशन' के साथियों को मेरे काम की जरूरत का पता चला तो उन्होंने मुझे अपनी संस्था में रख लिया। यहां पैसा थोड़ा ठीक- ठाक मिलने लगा तो घर की आर्थिक स्थिति थोड़ी अच्छी हुई। मेरे पति जहां काम करते थे, वहां पैसा ठीक से नहीं मिलता था, जिसकी वजह से अपने बच्चों को सूद पर पैसा लेकर पढ़ाना पड़ा। मेरे बच्चे पढ़ने में बहुत तेज हैं, इसलिए मैं दूसरे मां- बाप की तरह उन्हें भी डॉक्टर, इंजीनियर बनाना चाहती थी। इसके लिए मैंने कोशिश भी की और बदनामी झेलकर बच्चों को पढ़ायी। उसी समय संस्था में आपसी कलह के कारण वहां भी काम छूट गया।

मैं एक बार फिर से बेकार हो गई। काम के लिये 'जुड़ाव' संस्था में आवेदन दिया। मैं 1 मई 2007 को 'जुड़ाव' संस्था से जुड़कर काम करने लगी। शुरू में वहां भी पैसे कम मिलते थे और मैं आर्थिक रूप से काफी कमजोर थी। जब भी बच्चों के स्कूल- कॉलेज की फीस भरनी होती तो 'जुड़ाव' के अरुण विनायक जी और जगदीश वर्मा जी काफी मदद करते। मेरे साथ बच्चों के स्कूल में जाकर शिक्षकों से बात कर देते और तब मेरे बच्चों को परीक्षा लिखने दिया जाता। एक बार घर में खाने को कुछ नहीं था तब 'जुड़ाव' के सहयोगियों ने मेरी मदद की। उन्हीं की मदद से मैं अपने बच्चों की फीस भर सकी। संस्था के काम के कारण अगर ऑफिस से आने में देर हो जाती तो अड़ोस - पड़ोस के लोगों की काफी बातें सुननी पड़ती। मेरी रुचि अपने बच्चों को पढ़ाकर कुछ लायक बनाना था। मैं सोचती मेरा जीवन तो ऐसे ही बीत गया, लेकिन अच्छी शिक्षा देकर मैं अपने बच्चों का जीवन सफल बनाना चाहती थी।

मेरी आकांक्षा थी कि मैं और पढ़ूं, लेकिन आकांक्षा और इच्छा को दबाना पड़ा। मेरे अंदर कई कला है- गीत गाना, छोटी कहानी लिखना, समाचार सुनना, दूसरों की तकलीफ में साथ निभाना। अपने सभी कार्य को तत्परता से पूरा करना मेरी खासियत है। लेकिन जिंदगी में मैंने गरीबी, भेदभाव को झेलने और संथाली, खोरठा भाषा को सीखने में काफी चुनौती का सामना किया। वर्त्तमान में मैं अपने आप को एक हिम्मती, शिक्षित, काम के प्रति जिद्दी महिला के रूप में पाती हूं।

जब मैं 'जुड़ाव' संस्था से जुड़ी, तो मैं काम नहीं जानती थी। वहां के अभिवावक और सहयोगी कार्यकर्त्ता साथियों से बहुत सीखा। यहां से मुझे बाहर जाने के कई मौके मिले। अनेक मुद्दों पर प्रशिक्षण लेना, किताबों के द्वारा ज्ञान का विकास होना, जुलूस, धरना में जाकर बहुत मजबूती से अपनी बातों को रखना ये सभी चीजें मेरे अंदर

विकसित करने में संस्था का बड़ा योगदान है। संस्था में समय- समय पर आये हुए पत्रकार, बुद्धिजीवी और समाजसेवियों के आचार- विचार से मुझे काफी कुछ सीखने को मिला। उससे मुझे अपने सामाजिक काम करने में काफी मदद मिली। संस्था के जरिये मैंने समाज में अच्छी पहचान बनायी। मेरा कार्यक्षेत्र मधुपुर के आस - पास का इलाका है। समाज में भेदभाव, ऊंच-नीच, गरीबी, दु:ख-दर्द को बांटने का मैंने भरसक प्रयास किया। उसके अनुरूप अपनी भूमिका दर्ज करती रही हूं। समाज में पारदर्शिता के साथ काम करना मुझे अच्छा लगता है। महिलाओं से जुड़े मुद्दों को आगे लाने की कोशिश करती हूं। संताली और खोरठा भाषा को बोलना, समझना मेरे लिए आज भी एक चुनौती है। अंग्रेजी कम जानती हूं। इस समस्या का फिलहाल सामना कर रही हूं। लेकिन सीखने की कोशिश हमेशा जारी रहेगी।

समाज में महिला का स्थान और कार्यक्षेत्र दिन- प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। सारी दुनिया की ताकतें इसी ओर लगी हुई हैं। वे ताकतें हमारे समाज में भी विकसित हो रही हैं, जिन्हें हम पिछड़ा समाज कहते हैं। समस्याओं के निदान के लिए निष्पक्ष दृष्टिकोण जरुरी होता है। ऐसा नहीं है कि महिला की योग्यता कम है, पर ऐसा है कि उसकी इस श्रेष्ठता को सिद्ध करने का अवसर नहीं मिलता है।

ज्यों-ज्यों उसकी श्रेष्ठता उसके कर्मक्षेत्र में प्रकट होती जाएगी, उसे स्वीकृति मिलती जाएगी। वह अपने केंद्र के आस- पास के अंधेरे को छितरा लेगी। तब अंधेरे से ज्यादा रोशनी के घेरे बढ़ जाएंगे। चीजें साफ-साफ दिखाई देने लगेंगी। दिशा दिखाई दे जाए, तो रास्ता पाटना आसान हो जाता है।

❐❐

मेरे भीतर बदलाव दबे पांव आ रहा है..

- निरसो हांसदा

"ईमानदारी से जब कोई महिला अपनी जाति, क्षेत्रवादी सोच छोड़कर एक बड़े सामाजिक सरोकारों के इलाके में आती है तो तमाम रिश्तों और जिम्मेदारियों की शक्ल बदलने लगती है। तब, सब कुछ कष्टकर, अनिश्चित और दुविधामय लगने लगता है। जिस इलाके में महिलाएं सख्ती से घर के भीतर रखी जाती हैं और जहां अहं के कारण कई तरह की मेहनत-मजदूरी को महिला के लिए अलाभकारी बता दिया जाता है। वहां महिला चाहकर भी कुछ नहीं कर पाती। तब समाज और खुद अपनी जमात से अलग-थलग पड़ी महिला के अंदर ज्वालामुखी बनते चले जाते हैं। उसके लिए उसे अनेक सामाजिक बाधाओं को लांघना पड़ता है। मेरे सामने भी कुछ ऐसी ही कठिनाईयां थीं जिन्हें पारकर मुझे आगे बढ़ना था।

मैं निरसो हांसदा बेलडीह की रहने वाली हूं। मैं एक गरीब परिवार से हूं। गरीब होने के कारण मेरे मां और पिताजी ने मुझे पढ़ने के लिए मामा के घर गायताडीह (करनडीह, जमशेदपुर) में रहने के लिए पहुंचा दिया। मामा ने स्कूल में मेरा दाखिला करवा दिया। जब 5 क्लास और 6 क्लास तक पहुंची तो पढ़ाई के साथ- साथ सड़क के किनारे कोयला बिक्री का काम भी किया। अत: अधिकतर लड़कों के साथ मेरी दोस्ती हो गई थी। उनके साथ मैं गोटी भी खेलती थी और कोयला भी बिक्री करती थी। कोयला के साथ- साथ लकड़ी भी बिक्री किया करती थी। शाम को चना बेचती थी और उसी पैसे से पढ़ाई करती थी। इस तरह मैंने मैट्रिक की परीक्षा पास की। उसके बाद मैंने कॉलेज में एडमिशन लिया।

मेरे मामा के घर के नीचेवाले हिस्से में एक सामाजिक कार्यकर्त्ता का परिवार

रहता था। वे उस समय के झारखंड के आंदोलनकारी भी थे। उनका नाम कुमारचंद्र मार्डी है। उसी समय से साल्गे मार्डी से मेरा परिचय हुआ। वे लोग मुझे विभिन्न मीटिंगों में ले जाते थे। वे मुझे 'पीस' संस्था की ट्रेनिंग में भी ले गये। चूंकि उस समय मैं कॉलेज में तुरंत ही गई थी अत: इस तरह की मीटिंग और ट्रेनिंग मेरे लिए बिल्कुल नया था। मैं अपने गांव की मीटिंग भी कभी नहीं गई थी, इसलिए मुझे कुछ समझ में नहीं आता था। मैं नहीं जानती थी कि ग्रामसभा क्या होता है? आंदोलन के बारे में भी चर्चा होती थी, पर उस समय मैं नहीं समझ पाती थी। बस मैं मीटिंग में बैठी रहती और लोगों की बातें सुनती रहती थी। उसी तरह दिन बीतने लगे और मैं अपनी इंटर की पढ़ाई पूरी की।

इंटर की पढ़ाई के बाद हरहरघुटु, करनडीह में नर्स की ट्रेनिंग के लिए गई। नर्सिंग ट्रेनिंग खत्म करने के बाद उसी हॉस्पीटल में काम करने लगी। नर्सिंग के साथ आगे की भी पढ़ाई करने लगी। पढ़ाई और नर्सिंग के बाद दसमात हांसदा के साथ 2011 में मेरी शादी हुई और मैं मुसाबनी आ गई। शादी के बाद मैं उसी हॉस्पीटल में रहकर काम करने लगी और अपने स्नातक की पढ़ाई पूरी की। उसके कुछ दिन बाद हमलोग मेड़िया में रहने लगे जिससे मेरा नर्सिंग का काम छूट गया। फिर हमलोग खेती-बारी करने लगे। लेकिन पैसों की दिक्कतों के कारण हम दोनों फिर हरहरघुटु में भाड़े के मकान में रहने लगे और मैं सुन्दरनगर के मेडिकल दुकान में काम करने लगी। उसी से हम दोनों का गुजारा होता था। बाद में मेरे पति को भी वहीं पर काम मिल गया। इससे हमारी आर्थिक स्थिति थोड़ी मजबूत हुई। इसी बीच सालगे दीदी ने मुझे 'संवाद' संस्था के बारे में बतलाया और मुझे उसमें काम करने के लिए कहा। उनका कहना था कि तुम पहले से ही कुमारचंद्र मार्डी की मीटिंग में जा चुकी हो तो तुम्हें थोड़ा तो पता होगा कि ग्रामसभा क्या है? और कैसे काम करना है? पैसे के अभाव में काम के लिए राजी हो गई और इस तरह 'संवाद' संस्था से जुड़ गई।

'संवाद' संस्था से जुड़ने के बाद पहली बार दिसंबर में मैं मधुपुर पहुंची और मीटिंग में शामिल हुईं। वहां ग्रामसभा, जन जागरूकता इत्यादि मुद्दों पर चर्चा की गई। मुझे 10 गांवों में काम करने के लिए कहा गया। जब मैं काम के लिए गांव पहुंची तो मैं सोचने लगी कि कौन सी बात से शुरू करूं और किससे पहले बात करूं। इसी प्रकार दिन बीतता गया। फिर धीरे- धीरे गांव के लोगों से परिचय हुआ। ग्रामसभा और लोगों के हक- अधिकार पर चर्चा की। संस्था से जुड़ने के बाद से गांव और शहर के बारे में

जानकारी बढ़ी। उसके साथ ही अपने अंदर जो कमियां हैं उसको अब मैं जान पा रही हूं। अब गांवों में लोग मुझे 'संवाद' संस्था के द्वारा ही पहचानते हैं। अब मेरी अलग पहचान बन गई है। गांव की महिलाएं अपने हक- अधिकार के लिए खुद संघर्ष कर रही हैं। लोगों को सरकारी योजना का लाभ मिलने में संस्था भी सहयोग कर रही है। अब लोगों के साथ-साथ मेरी अपनी भी क्षमता का विकास हो रहा है। जो काम पहले मुझे असहज लगता था, वही काम अब मैं आसानी से कर पाती हूं। हालांकि अब भी मुझे अनेक कामों को अपने सीनियर साथियों से सीखने की जरूरत है। अपना हक-अधिकार के लिए संस्था मेरे 'स्व' को सशक्त कर रही है। प्रयास और संघर्ष वर्त्तमान और भविष्य के लिए एक ऐसी संपत्ति है, जिसपर हमें गर्व करना चाहिए।

जब मैं समाज के बारे में सोचती हूं, तो मुझे लगता है कि समाज की एक अलग पहचान होती है। समाज में अलग-अलग धर्म, अलग-अलग रीति-रस्मों को पालन करने वाले लोग होते हैं। जैसे घर में एक परिवार में लोग साथ मिलजुल कर रहते हैं, वहां अनेक कठिनाईयां होती हैं, फिर भी वे लोग अच्छी तरह से रहते हैं। सभी लोग एक-दूसरे के सुख-दुःख को समझते हैं। परिवार के लोग मुश्किल समय में भी साथ रहते हैं। उसी प्रकार समाज भी परिवार की तरह है। जिसमें सभी धर्म के लोग रहते हैं। सभी के अपने रीति-रिवाज होते हैं। पर सभी लोग मिलजुल कर रहते हैं। समाज में रहते हुए मिल जुलकर रहना और अपने समाज के अच्छे विचार को अपनाना है। समाज के सभी लोगों का शिक्षित होना आवश्यक है। तभी हम अपने हक-अधिकार के लिए लड़ सकते हैं। समाज में हम सब स्वतंत्र हैं। लेकिन हमें क्या चाहिए, उसके लिए सही जानकारी का होना आवश्यक है।

बदलाव दबे पांव आ रहा है। छोटे कस्बे में अशिक्षित, मजदूरी करती महिला भी अत्याचार सहना नहीं चाहती। हमारी पहचान आर्थिक रूप से स्वावलंबी होती महिला के रूप में उभरी है। नया रूप आत्मनिर्भर होने का, स्वाभिमान की रक्षा का, सामर्थ्य जुटा पाने का है। इससे महिलाओं के लिए संघर्ष करने का बल मिला है। अपने स्व विवेक के बल पर सही निर्णय और अपने लिए न्याय मांग पाने की क्षमता बढ़ी है। मैं अब पुराने विश्वासों और नये मान्याताओं के बीच जूझती महिला अपने अस्तित्व को पहचान रही हूं।

❑❑

चलकर राह बनाती रही कदम-दर-कदम

- सुशीला हेम्ब्रोम

"आमतौर पर लोग कहते हैं घर का खूंटा मजबूत होना चाहिए। अगर खूंटा मजबूत होता है तो आपका घर सही सलामत रहता है। जैसे ही खूंटे में घुन लगता है, खूंटा कमजोर होने लगता है। खूंटे के कमजोर होते ही घर के गिरने का भय लगा रहता है। जैसे ही खूंटा टूटता है घर भी भरभराकर गिर जाता है। घर के खूंटे की तरह ही घर के बड़े बुज़ुर्ग होते हैं जिनके रहने से घर मजबूत रहता है अर्थात घर में सामूहिकता रहती है। सब साथ रहते हैं, साथ काम करते हैं। किसी को कोई परेशानी नहीं होती है। परंतु बड़े बुज़ुर्गों के गुजर जाने के बाद घर टूटने लगता है। लोग व्यक्तिवादी बन जाते हैं। मेरे घर में भी ऐसा ही हुआ।"

पहले हमारा घर संयुक्त परिवार था। दादा-दादी, चाचा-चाची, मां-पिताजी, दो बुआ और मैं मिलाकर 9 सदस्य थे। दादाजी के सड़क दुर्घटना में मृत्यु के बाद पिताजी और चाचाजी ने बंटवारा कर लिया और अलग रहने लगे। दादी, चाचाजी के साथ रहने लगी। बुआ लोगों की शादी हो गई। अब मुझे (सुशीला हेम्ब्रोम) देखने वाला कोई नहीं था। मैं बहुत छोटी थी। पिताजी (अनिल हेम्ब्रोम) और मां (सूरजमनी किस्कू) दोनों को काम के लिए खेत जाना पड़ता। मेरी देखभाल ठीक से हो इसलिए मां ने मुझे नानी के पास छोड़ दिया। मेरा लालन-पालन नानी करने लगी। जब मेरी एक छोटी बहन हुई उसको भी नानी अपने घर ले गई। हम दोनों बहनों की परवरिश नानी घर पर ही हुई।

नानी घर में छोटा बच्चा नहीं होने के कारण हमलोगों को ज्यादा ही लाड़ दुलार मिलता। नानाजी चितरा कोलियरी में नौकरी करते थे। अत: मैट्रिक तक की पढ़ाई

चितरा से हुई। उसके पश्चात जामताड़ा में इंटर में नामांकन मेरी नानी ने करवा दिया। नानाजी रिटायर्ड हुए और उन्हें लकवा मार गया। काफी इलाज के बाद भी उन्हें बचाया नहीं जा सका। इलाज में काफी पैसे खर्च हो गये थे तो मुझे लगने लगा कि अब मेरी आगे की पढ़ाई नहीं हो पायेगी क्योंकि पढ़ाई-लिखाई का सारा खर्च नाना-नानी ही मिलकर कर रहे थे। परंतु मेरी नानी ने हार नहीं मानी। मेरी बी.एस.सी. की पढ़ाई नानी के बदौलत संपन्न हुई।

ग्रेजुएशन पूरी करते ही मेरे फूफा ने मुझे फोन कर पूछा कि क्या तुम संस्था में काम करोगी? मैंने भी हाँ बोल दिया। मेरे हां बोलते ही मेरे फूफा ने अफजल अंसारी का नंबर मुझे दिया। अफजल से बात करने पर पता चला कि 'संवाद' नाम की संस्था को जामताड़ा में कार्य करने के लिए एक महिला की जरूरत है। यदि कार्य करना है तो अपना बायोडाटा मुझे भेज दो। उन्होंने मुझे 'संवाद' के कुंदन जी का नंबर दिया। उनसे बातचीत करने के बाद उन्होंने मुझे सारे दस्तावेज लेकर मधुपुर आने को कहा। लिखित परीक्षा एवं साक्षात्कार के बाद मेरा चयन 'संवाद' में हुआ। मुझे कार्यक्षेत्र में जामताड़ा प्रखंड का बरजोड़ा, चन्द्रदीपा, चालना और दुलाडीह क्षेत्र मिला। कार्यक्षेत्र में जाने के पहले ओरियेन्टेशन एवं क्षमतावर्द्धन कार्यशाला हुई जिसमें प्रोजेक्ट से जुड़े सभी साथी शामिल हुए। इस कार्यशाला में क्या करना है? कैसे करना है? इसकी विस्तृत जानकारी दी गई। शुरू-शुरू में कार्यक्षेत्र जाने में मन में भय रहता था कि लोगों से कैसे मिले? कैसे बात करें? पर जब काम करना है तो भय को पीछे छोड़ना पड़ेगा। यह बात मानकर चार साथी के साथ मिलकर अपना काम शुरू किया।

गांव के मांझी बाबा एवं अन्य ग्रामीणों के साथ संपर्क करती उन्हें अपना परिचय एवं कार्य के बारे में बताती। क्षेत्र भी नया और हम भी नये। पर धीरे-धीरे लोगों से संपर्क बढ़ने लगा तो कार्य करने में आसानी होने लगी। पहले कार्यक्रम के दौरान लोगों को घर-घर जाकर बुलाना पड़ता था। लोगों की अपेक्षा भी रहती थी कि हमें क्या मिलेगा? पर अब वह स्थिति नहीं रही। लोग जागरूक हो रहे हैं अपने हक अधिकार को जान रहे हैं। अब क्षेत्र में अपनी एक पहचान भी बन रही है। आत्मविश्वास में भी बढ़ोत्तरी हुई है। नये-नये जगहों में जाने का अवसर, नये लोगों से मिलकर नयी-नयी बातों को सीखने जानने का मौका मिलता है तो बहुत अच्छा लगता है। अब मन से डर खत्म हुआ है। कहीं भी अकेले जा सकती हूं। बिल बाउचर बनाने के साथ-साथ रिपोर्ट लिखने की क्षमता में विकास हुआ है। पहले मैं बहुत कम बोलती थी पर संस्था से जुड़ने

के बाद अपनी बातों को रखने का हिम्मत आया है। अब अपनी बातों से लोगों को समझा पाती हूं। हां समाज परिवर्तन के कार्य में चुनौतियां तो बहुत है परंतु सूझ-बूझ से अगर कार्य किया जाए तो चुनौतियों से हम निपट सकते हैं।

मेरे अंदर काफी बदलाव आया है। सीखने की कोई उम्र सीमा नहीं होती है। मेरे कदम बदलाव की ओर आगे बढ़ चुके हैं। क्या आप इसमें मेरा साथ देंगे? मुझे आशा ही नहीं पूरा विश्वास है कि सबों का सहयोग अवश्य मिलेगा।

❒❒

एकल मां - मौत भी तुझसे हारी है

- मनोनित रेबेका तोपनो

"किसी भी मनुष्य की जिंदगी में विपत्ति कभी बताकर नहीं आती है। जब विपत्ति चारों ओर से आती है तो अधिकांश मनुष्य अपना आपा खो देते हैं। महिला जब अकेली मां हो तो उसे और भी कठिनाईयां झेलनी पड़ती हैं। बहुत कम लोग ही ऐसे होते हैं जो कठिनाईयों के आने से जल्द घबराते नहीं हैं, बल्कि स्थिर मन से परिस्थितियों का आकलन कर उसको सुलझाने का प्रयास करते हैं। इससे उनके मन में मजबूती आ जाती है। परिस्थिति चाहे कैसी भी हो, उसे लगने लगता है कि सभी लोग उसके साथ हैं। मेरी भी स्थिति कुछ इसी तरह की हुई थी। पर समय के साथ- साथ मेरे सभी घाव भरते गए और मैं अपने - आप में काफी मजबूत होती गई। कहते हैं न कि जिंदगी हर कदम एक नईं जंग है।"

मैं मनोनित रेबेका तोपनो, मेरे पिता का नाम मार्शल तोपनो एवं मां का नाम शिलवंती तोपनो है। मेरा जन्म खूंटी जिले के तोरपा प्रखंड अंतर्गत निचीतपुर गांव में हुआ था। मेरे पिताजी सेना में थे, वहां से सेवानिवृत होकर सी.सी.एल., बनियाडीह, गिरिडीह में सिक्योरिटी गार्ड के रूप में काम किए। मां गृहिणी है। पांच भाई बहनों में मैं सबसे बड़ी हूं। मेरी शिक्षा-दीक्षा क्रमश: कार्मेल स्कूल गिरिडीह, सर जे. सी. बोस, गिरिडीह और राम कृष्ण महिला कॉलेज, गिरिडीह से हुई है।

यूं तो मेरे पिताजी सरकारी नौकरी में तो थे पर शराब की लत की वजह से परिवार को बहुत ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। मां बहुत मुश्किल से घर चला पाती थी। कई बार पैसों की कमी हो जाती थी। पर्व-त्यौहारों में हमारे लिए मां स्कूल ड्रेस ही खरीदती थी और बच्चे जब रंग बिरंगे कपड़े पहनते तो हमें स्कूल ड्रेस

पहनने को मिलता था। हम सभी भाई बहन बहुत गुस्सा करते थे। पर अब लगता है कि अगर मां हमारे लिए रंग - बिरंगे कपड़ों की जगह स्कूल ड्रेस न देती तो आज हम लोग पढ़-लिख नहीं पाते और अपने पैरों पर खड़े नहीं हो पाते। उनके खुद के पास भी बहुत कपड़े नहीं होते थे। वो पुरानी साड़ी में ही पर्व-त्योहार गुजार लेती थी। लेकिन मेरी मां पढ़ाई के मामले में बहुत ही क्लियर थी। पढ़ाई-लिखाई से संबंधित मामलों में मां ने कभी पैसे की कमी नहीं होने दी। मांगने पर कहीं से भी इंतजाम कर ही देती थी, पर ज्यादा दिन ये सब हमने नहीं झेला।

एक दिन मां ऑफिस गई और अधिकारियों से बात की कि मेरे पिता सारा पैसा पीने में ही खर्च कर देते हैं। घर चलाने के लिए पैसा नहीं देते हैं, तो वहां के अधिकारियों ने तय किया कि जिस दिन सैलरी मिलेगी उस दिन मां को भी बुला लिया जायेगा। अब जिस दिन सैलरी मिलती थी मां और बाबा को लेने जीप घर आ जाती थी और रु. 1000/- (एक हजार रुपए) पिताजी को देकर बाकी सारे पैसे मां को दिया जाने लगा। इसके बाद घर की आर्थिक स्थिति तो थोड़ी सी सुधरी पर घर में कलह शुरू हो गया। पैसे के लिए मां बाबा के बीच आपस में झगड़ा होने लगा, घर से सुख-शांति गायब सी हो गई। फिर जब हम बच्चे कुछ बड़े हुए तो लड़ाई झगड़ा थोड़ा कम हुआ।

ग्रेजुएशन करने के बाद मुझे बाल विकास फाउंडेशन के एक कार्यक्रम में जाने का मौका मिला, उस समय यह संस्था 'स्टेट प्रोग्राम फॉर एलीमेंटरी एजुकेशन डेवलपमेंट' प्रोग्राम के तहत गिरिडीह में बच्चों का सर्वे एवं हर सरकारी स्कूल के लिए ग्राम शिक्षा समिति के गठन का कार्य कर रही थी। फिर कुछ समय मैंने इस संस्था में जुड़कर काम भी किया।

फिर जागो फाउंडेशन या प्रगति केंद्र ठीक-ठीक याद नहीं है (गिरिडीह की संस्था) के द्वारा जुड़ाव के संपर्क में आई। जुड़ाव में मैं कार्यकर्ता निर्माण प्रशिक्षण कार्यशाला से जुड़ी। यह कार्यशाला जितना मुझे याद है, उसके अनुसार शायद 2004 में हुई थी उसी कार्यशाला में मुझे बेरना दी, सीमा दी, मनोरमा दी और घनश्याम दा जैसे लोगों से मिलने का मौका मिला। इस कार्यशाला के दौरान बहुत सारी चीजें सीखने को मिली जो स्कूली जीवन एवं महाविद्यालय की पढ़ाई से बिल्कुल भिन्न थी। ग्राम सभा शब्द से परिचय भी उसी समय हुआ।

बेरना दी, मनोरमा दी और सीमा दी हमें सिखाती थी। उन्हें देखकर लगता था

कि इनके जैसा बनना है। फिर घनश्याम जी की बातों का ऐसा असर हुआ कि मुझे लगने लगा संस्था में ही काम करना है ताकि अपने लोगों के लिए जो वंचित है, जिन्हें मदद की आवश्यकता है उनके लिए समाज में अपना योगदान दे सकूँ। फिर कुछ समय बाद पता चला कि गिरिडीह जिले के गाण्डेय ब्लॉक में उदयपुर पंचायत हेतु एक सामुदायिक कार्यकर्ता की आवश्यकता है। मेरा ग्रेजुएशन हो चुका था। घर से आना जाना करके काम करना संभव नहीं था इसलिए मैंने चेंगरबाद गांव में ही एक रूम किराये पर ले लिया। यह घर संताल आदिवासियों का था। गृहस्वामी का नाम तो याद नहीं है। उस घर की बेटी मोनिका टुडु मेरी दोस्त बन गई। उसके साथ ही हमलोग गाँव का विजिट किया करते थे। लोगों के साथ मिलना, बातचीत करना, उनकी समस्याओं को सुनना, महिला समूह से मिलना, समूह का निर्माण करना मेरे काम का हिस्सा था। यह सब करते हुए मुझे मजा आने लगा। बीच-बीच मां आगे की पढ़ाई करने को कहती रहती थी। लेकिन मैंने उनकी एक नहीं सुनी। मुझे जुड़ाव संस्था के साथ काम करना अच्छा लगने लगा। घूमते फिरते लोगों से बात करते मुझे रु. 2500/- मिल जाता था। यह मेरे लिये बहुत था। पहली बार जब मुझे पैसा मिला तो मैंने मां के लिए साड़ी, घर के लिए मिठाई, राशन और मां के साथ अपर बाजार गिरिडीह से चावल की बोरी खरीदी। यह सब करके मुझे बहुत अच्छा महसूस हुआ। मुझे लगने लगा अब मैं बड़ी हो गई हूँ, तो मुझे घर के खर्चों में माँ की मदद करनी चाहिए। माँ को मैंने अभावों में गुजारा करते देखा था, साड़ी तो वह अपने लिए बहुत मुश्किल से खरीदती थी। घर की जरूरतों को ही बहुत मुश्किल से पूरी कर पाती थी।

मैंने यहाँ काम करते हुए संथाली भाषा सीखी जो अब मुझे अपने काम में मदद करता है। इसके बाद 2005 में झारखंड यात्रा का आयोजन किया गया था इस यात्रा के दौरान झारखंड के 22 जिलों की यात्रा की गई। इस यात्रा में लगभग 80 लोगों की टीम भाग ली थी। इतनी बड़ी टीम को मैनेज करना, खाना-पीना से लेकर सारी सुविधाओं का ख्याल रखना बड़ा काम था, पर अनुभवी लोगों के द्वारा यात्रा सुव्यवस्थित तरीके से संपन्न हो सकी। इस दौरान बहुत कुछ सीखने को मिला जैसे यहाँ गाना, नाचना, माइक में बोलना। इस यात्रा में एक सांस्कृतिक टीम भी था जिसका काम था पड़ाव पर पहुंचते ही गाना गाना और नाटक का मंचन करना। मैं भी इस टीम का हिस्सा थी, साथ ही रिपोर्टिंग की दोहरी जिम्मेवारी भी ले रखी थी। रिपोर्ट लिखने के लिए मुझे अरुण विनायक जी का मार्गदर्शन मिलता रहता था। यात्रा, नाटक और

साथ में रिपोर्टिंग करते करते थक जाती थी पर जितना जिम्मा ले रखा है तो उसको पूरा करना ही था, सो लगी रहती थी।

यात्रा में एक रिपोर्टिंग टीम भी थी जिसमें रिपोर्टर और फोटो वीडियोग्राफी की टीम थी। उस टीम के साथी विजय गुप्ता नाम के शख्स भी बीच-बीच में मेरी मदद किया करते थे। ऐसे सब लोग एक दूसरे की मदद किया करते थे। यात्रा के दौरान जिस बस में मैं थी, उसमें पीछे की तरफ चूड़ा से भरा हुआ एक बोरा रखा हुआ था जब भूख लगती थी बारी-बारी से हम लोग बोरा के पास जाकर चूड़ा फांक लिया करते थे। यात्रा में रहते हुए धैर्य रखना सीख गई थी। न समय पर खाना मिलता न पानी। सफर में थकान के मारे भी बुरा हाल हो जाता था। परेशानियां भी बढ़ रही थी पर गंतव्य पर पहुंचने की खुशी उन सभी परेशानियों पर भारी पड़ रही थी। यात्रा में सिद्धू दा, मार्डी दा, अरुण विनायक, मुन्नी हांसदा, एमेलिया हांसदा, घनश्याम दा जैसे लोगों के भाषण को सुनकर शरीर में एक नई ऊर्जा भर जाती थी। एनर्जी आ जाता था और थकान गायब। जहां हम पहुंचने वाले होते यात्रियों के खाने-पीने की व्यवस्था वहां के ग्रामीण एवं जुड़ाव के कार्यकर्ता मिलकर किया करते थे। यह स्थान किसी कार्यकर्ता का कार्यक्षेत्र होता था।

फिर ज्यादा दिनों तक मैंने संस्था में काम नहीं किया, क्योंकि मेरी शादी हो गई और मुझे रांची शिफ्ट होना पड़ा। रांची में भी मैं महिलाओं के साथ समूह बनाकर महिला समूह चला रही थी। लेकिन मैं अपने घर परिवार में व्यस्त हो गई। फिर दोनों बच्चे हुए तो मैं उनकी परवरिश में लग गई। बच्चे जब थोड़े बड़े हुए तो हमने स्टूडियो खोला क्योंकि पति फोटोग्राफर थे। मैं स्टूडियो का बेसिक काम जैसे फोटो कॉपी करना, पासपोर्ट फोटो बनाना, फोटो खींचना सीख कर स्टूडियो में बैठने लगी। पति बाहर फोटोग्राफी और वीडियोग्राफी के लिए जाया करते थे। मैं घर और स्टूडियो दोनों संभालती थी। फिर कुछ समय बाद घर में एक सहायक और स्टूडियो में भी एक सहायक को रखा। इससे काम थोड़ा आसान हो गया। अब तक हमने रांची में जमीन खरीद कर दो रूम का एस्बेटस शीट वाला घर बना लिया था। हम लोग वहां शिफ्ट हो गए।

सबकुछ ठीक चल रहा था। शादी के 9 वर्षों बाद मेरे पति का देहांत हो गया। उस वक्त मेरी उम्र 35 वर्ष थी। मेरा बड़ा बेटा 8 वर्ष एवं छोटा 4 वर्ष का था। घर में कोई जमा पूंजी नहीं थी। हमने कोई बचत भी नहीं कर रखी, क्योंकि जमीन खरीदने एवं घर बनाने में ही सारा पैसा खत्म हो चुका था। बस एलआईसी से रु. 1,00,000

मिलना था जो याद तो नहीं है पर तीन चार-माह बाद मिल गया। पति के देहांत के बाद ससुराल वालों ने 6 माह तक हर महीने रु. 5,000 की मदद देने की बात कही, जो उन्होंने दिया भी और साथ में कहा कि 6 महीने तक कोशिश करिए अगर दिक्कत होगा तो ससुराल में आकर रहिए। यह बात मेरे देवर या सास ने नहीं कहीं मेरे नन्दोसी ने कही। इसलिए मैंने अपना घर जो रांची में है, रहना पंसद किया।

फिर रांची वाला घर बेच देने का प्रस्ताव भी घरवालों की तरफ से आया लेकिन मैं इसके लिए तैयार नहीं थी। इस वजह से घर वाले नाराज भी हुए। ऐसे कठिन समय में मेरी बहने और मेरी मां आकर मेरे घर में रहा करती थी और हमें संभालती थी। अब मेरे ससुराल से कोई मदद नहीं मिल रहा था। अब जो करना था अपने दम पर करना था। इसी तरह अभाव में कुछ दिन रहे। मायके से थोड़ी बहुत मदद मिल जाती थी। बच्चों की पढ़ाई के लिए और घर को बढ़िया से चलाने का ख्याल मेरे दिमाग में आता रहता था। स्टूडियो मैं अब भी चला रही थी लेकिन पति के जाने के बाद परिस्थितियां बहुत ही बदल गई। जो रूम हमें 700 रुपए में मिला था उसका किराया 2000 कर दिया गया। सिर्फ पासपोर्ट और फोटोकॉपी से घर चलाने जितना पैसा कमाना मुश्किल लग रहा था। काम में बहुत ज्यादा परफेक्ट भी नहीं थी। चार शादियों में फोटो वीडियोग्राफी का काम मिला, पर सभी काम में शिकायत आ गया। यह काम मैंने एक साल तक कुछ लड़कों को साथ लेकर किया, वे हमारे यहाँ ही काम किया करते थे। वे भी काम को बहुत अच्छी तरह नहीं सीख पाए थे इसलिए बहुत दिक्कत आ रही थी। इस समय कुछ स्टूडियो वालों ने मुझसे अपने स्टूडियो में काम करने को लेकर बात भी किए पर मुझे ज्यादा काम नहीं आता था अत: संकोचवश मैंने मना कर दिया। फिर कुछ फोटोग्राफर साथियों ने मुझे सलाह दिया कि भाभी आप कुछ और काम कर लीजिए। यह काम आपके लिए बहुत मुश्किल होगा। मुझे भी कुछ समय बाद ऐसा ही लगने लगा। कुछ साथी ऐसे भी थे जो बोलते थे कि आप हमारे साथ चलकर काम सीखिए। विजय जी का बनाया हुआ 'ब्रांड स्पेक्ट्रा' डिजिटल स्टूडियो को ऐसे खत्म होने मत दीजिए। लेकिन दो छोटे बच्चों को छोड़कर रात में घर से निकलना संभव नहीं था। अब लगता है कि मैं कोशिश करती तो यह काम बहुत मुश्किल नहीं था। मैं स्टूडियो बंद करने का फैसला कर चुकी थी सो मैंने इसे बंद कर दिया।

स्टूडियो बंद करने का दूसरा कारण यह भी था कि दोनों बच्चे स्कूल से आकर मेरे साथ स्टूडियो में ही रहते थे इसलिए कि दोनों छोटे थे। उस समय शाम के समय पुंदाग

के लिए ऑटो नहीं मिलती थी। जब हम लोग वापस लौटते थे तो एक बच्चे को गोद में लेकर दोनों बच्चों का स्कूल बैग, और एक थैला जिसमें दोपहर के भोजन का लिए टिफिन होता था मैं टांग लेती थी और हम लोग पैदल ही 3 किलोमीटर चलकर आते थे। उस समय रास्ते में एक व्यक्ति बहुत बुरी नजर से हमें देखता रहता था। यह एक दिन की बात नहीं थी। हर रोज वह रास्ते में रहता और घूरता रहता। मुझे डर सा लगने लगा था। कभी-कभी तो एक दो लोग स्टूडियो में आकर बैठे रहते थे। वे लोग सिगरेट पीते थे और मेरे मना करने पर भी वे नजरअंदाज कर देते थे।

पति के गुजरने के बाद मैं खुद को बहुत ही असहाय महसूस करती थी। कोई परेशान करता, या फिर कोई कुछ बोलता, घर में कुछ घट जाता तो परेशान हो जाती थी और रोती। अपने किस्मत को कोसती थी। रोने के अलावा मैं कुछ और नहीं कर पाती थी। एक डर सा लगा रहता था। अब बच्चों का क्या होगा। घर का काम तो मुझसे होता नहीं था ऊपर से अब दोहरी जिम्मेवारी। घर में दोनों बच्चों को तो मां बहने कभी-कभी आकर संभाल दे रही थी लेकिन घर चलाने के लिए अब मुझे काम करना ही था। उस समय किसी के माध्यम से पता चला कि सर्वे का काम होने वाला है। मेरी छोटी बहन आतेन से पता चला कि कुछ संस्थाएं सर्वे के काम के लिए कुछ महिलाओं को हायर कर रही हैं। यह काम मेरे लिए नया था। मैंने इस तरह का कोई काम नहीं किया था। यह काम तीन महीने के लिए था। मैं घर से बाहर जाना चाहती थी क्योंकि घर में रहकर मैं डिप्रेशन का शिकार हो रही थी। 3 महीने का काम मिला हम लोग हजारीबाग, रामगढ़ और रांची में सर्वे का काम किए। काम के एवज में महीने के 14000 मिल जाते थे।

काम खत्म होने के बाद मैं घर वापस लौटी। वर्ष 2015 की बात है इसी दौरान अश्वनी कुमार पंकज एवं वंदना टेटे के सहयोग से एक फेलोशिप के लिए एप्लाई किया। मेरा सिलेक्शन भी हो गया। इंटरव्यू दिल्ली में हुआ था। मुझे मुंडारी के गीतों और साहित्य के बारे में बहुत जानकारी नहीं थी पर तर्क के सहारे मैंने उन्हें जवाब दिया। इस काम को पूरा करने के लिए मुंडा गांवों का दौरा किया। मुंडारी कहानी और गीतों का संग्रह भी किया। मुंडाओं की जीवन पद्धति एवं स्वशासन व्यवस्था को समझने का मौका मिला। यहां से 2 वर्ष का फेलोशिप मिला जिसमें रु. 10,000 प्रतिमाह मिलते थे।

फिर 2017 में एक रिसर्च काम के माध्यम से संवाद से जुड़ी। विषय था- जैव

विविधता। उस समय कुछ महीनों तक मुझे 17,000 रूपये महीना मिलता था। इसके बाद संवाद के दूसरे प्रोजेक्ट से जुड़ी। इसका कार्य क्षेत्र रांची जिले के इटकी ब्लाक अंतर्गत 4 पंचायतों के 20 गांव में था। इस प्रोजेक्ट में काम करते हुए मैं गांव की स्थिति को समझी कि कैसे आदिवासी समुदाय रहते हैं और रहन-सहन का स्तर कैसा है। शिक्षा एवं सामूहिकता आदि को जानने, समझने का मौका मिला। इस काम से मुझे रु. 11,000 मासिक मिलने शुरू हुए, अब महीने की एक निश्चित आमदनी थी। घर परिवार चलाना थोड़ा आसान हो गया था। एक असुरक्षा का जो भाव था, वो भी खत्म हो गया था। बच्चों की पढ़ाई की व्यवस्था भी ठीक-ठाक हो गई थी। यह 2019 की बात है। तब से लेकर आज तक संवाद में कार्यरत हूं। संवाद से आर्थिक और मानसिक स्तर पर काम करते हुए काफी सहयोग मिला।

जब कोरोना महामारी आई, तब लॉकडाउन के कारण कार्यक्षेत्र में नहीं जा रहे पा रहे थे। बस फोन पर कार्यकर्ता और ग्रामीणों के संपर्क में थे। उनको क्या झेलना पड़ रहा है, सरकार द्वारा क्या सुविधा दी जा रही है, क्या एहतियात बरतना है यही सब बातें होती थी।

लॉकडाउन के समय दीपक बाड़ा जो सोशल एक्टिविस्ट है, उनके मार्फत प्रवासी मजदूर नियंत्रण कक्ष में काउंसेलर के रूप में कार्य करने का मौका मिला। इस कार्य के दौरान विभिन्न तरह के अनुभव हुए। बीच-बीच में काउंसलर्स की काउंसलिंग भी होती रही। काम के दौरान एक संतुष्टि महसूस हो रही थी की चलो आपात स्थिति में मैं कुछ तो काम कर सकी।

काउंसेलिंग के दौरान हमें बताया जाता था कि लोगों से कैसे बात करनी है। हमें यह बताया जाता था कि सब हमारे कंट्रोल में नहीं है। इसलिए आप लोग दुखी न हो। आप जो कर सकते हैं जो आपके बस में है उसे पूरी शिद्दत से करिए। दुख होता ही है पर उसे अपने ऊपर ज्यादा हावी होने न दें। दुखी होने की आवश्यकता नहीं है। जब भी कोई आपदा आती है लोग मरते ही हैं। बचावकर्मी बचाव करते हैं। अपने को खुश रखने के लिए कोशिश करें और ज्यादा से ज्यादा लोगों से बातचीत करें।

जो भी हो इस काम को करते हुए झारखंड की मजदूरों की वास्तविक स्थिति से अवगत हुई - लोग कितने अभाव में जी रहे हैं, कितनी संख्या में पलायन कर रहे हैं, क्यों कर रहे हैं, यह सब जानने समझने का मौका मिला। दोबारा से परिस्थितियां जब सही हुई मैं वापस संवाद के कामों में जुड़ गई। और एक बात का मैं यहाँ जिक्र करना

चाहती हूं। मुझे आदिवासी व्यंजन बनाने का बेहद शौक है। मैं नए-नए प्रयोग करती रहती हूँ। लॉकडाउन के दौरान भी मैंने काफी प्रयोग किया। मड़ुआ रोटी, मड़ुआ डम्बू करते-करते आज मैं मडुवा लड्डू तक पहुंची हूं, जिसका अभी लोगों के बीच में बहुत क्रेज है और डिमांड है। इसके बारे में बातें फिर कभी होंगी। आज के लिए इतना ही।

आज मैं जो कुछ भी हूं, संवाद के वजह से ही हूं। संवाद बीच-बीच में बहुत सारे कार्यकर्ता निर्माण प्रशिक्षण और अन्य विषयों पर भी समय-समय पर प्रशिक्षण दिया है। किसी भी तरह की परेशानियों का सामना करने के लिए मैं मजबूती से डटी रहती हूं। जहां मैं रहती हूं, वहां भी टोले मोहल्लों में भी अगर किसी को कोई परेशानी होती है, तो लोग एक बार आकर मुझसे पूछते जरूर हैं। कभी-कभी मोहल्ले में जो बैठकें होती हैं महिलाओं को बुलाएं या ना बुलाए मुझे जरूर बुलाते हैं।

मैं पीछे मुड़कर देखती हूं तो खुद को एक मजबूत महिला के रूप में पाती हूँ। आर्थिक रूप से बहुत सक्षम तो नहीं कहूंगी लेकिन लगता है कि किसी भी तरीके से किसी भी परिस्थिति में मैं सरवाइव कर लूंगी। अब मुझे डर नहीं लगता है, हां मुझे थोड़ा गुस्सा ज्यादा आता है जिस पर कंट्रोल करने की जरूरत है। यह शुरू से नहीं था। मैं समझती हूं कि मेरे ऊपर दोहरी जिम्मेदारी है और कभी कभी परिस्थितियां अपने मुताबिक नहीं रहती हैं तो बुरा लगता है और मन चिड़चिड़ा हो जाता है। इस वजह से मुझमें गुस्सा रहता है।

कुछ महिलाएं जो मुझे देखती हैं वह कहती हैं कि आपकी जगह कोई और होता तो वह बिखर जाता लेकिन आपने सब कुछ संभाल लिया। मैं उन्हें जवाब देती हूं कि मेरे दो बच्चे हैं उनके लिए तो जीना है, उनके लिए काम तो करना है, संभलना तो पड़ेगा ही कमजोर होने से बर्बाद ही होंगे। आज मेरी भी एक पहचान है, वो सिर्फ मेरे अकेले के दम पर नहीं है। मेरी मजबूती के पीछे मेरी मां-बहनें, संवाद संस्था, मेरा समाज, मेरा मोहल्ला, फोटोग्राफर संगठन और मेरे दोस्त हैं जो मुझे हमेशा यह एहसास दिलाते हैं कि वे मेरे साथ हैं। चाहे परिस्थिति कैसी भी हो, आज मुझे हर समय महसूस होता रहता है कि आप सब लोग मेरे साथ हैं।

❒❒

अपनी मुक्ति की लड़ाई खुद ही लड़नी है

- मिनीला बासकी

"पिछले चालीस-पचास वर्षों में महिलाओं की स्थिति में बहुत बड़ा परिवर्त्तन आया है। शिक्षा, आर्थिक स्वतंत्रता, अपनी अस्मिता की पहचान, बड़े-बड़े पदों पर काम करने से उपजे आत्मविश्वास ने बिल्कुल नयी महिला को जन्म दिया है। गांव, शहर, महानगर हर जगह महिलाओं के जीवन में राजनीति, अर्थनीति और संचार की नई तकनीक के असर से कई बदलाव आए हैं। और आ रहे हैं। महिलाओं ने वर्त्तमान स्तर को प्राप्त करने के लिए जो सराहनीय प्रयास किया है उसको देखकर मैं भी अपनी जिंदगी में कुछ करना चाहती थी पर आर्थिक अभाव हमेशा दो कदम पीछे धकेल देता और मैं निराश हो जाती। पर अंत में मैंने भी कुछ करने की ठानी, क्योंकि परिवार को चलाने के लिए मुझे कुछ तो करना ही था।"

मेरा जन्म पाकुड़ जिला के नारायणगढ़ गांव में हुआ। मेरी मां का नाम मालती मुर्मू और पिता का नाम बरसन बास्की है। हमलोग पांच बहन और दो भाई हैं। मेरा बचपन बहुत ही गरीबी में बीता। खेती के अलावा आय का कोई दूसरा स्त्रोत नहीं था। मेरी पढ़ाई सरकारी विद्यालय से हुई। विद्यालय जाने के पूर्व गाय चराना और विद्यालय से लौटने के पश्चात गाय चराना मेरी दिनचर्या का हिस्सा था। जब थोड़ी बड़ी हुई तब पढ़ाई के साथ-साथ घर का सारा काम करना पड़ता था। हाई स्कूल की पढ़ाई के समय तो पढ़ने का समय ही नहीं मिलता था। चूल्हा में खाना चढ़ाकर जो समय मिलता उसी में पढ़ाई करती। जब खेती के समय खेत में काम करना होता था तो स्कूल जाते ही नहीं थे। ऐसे ही किसी तरह पढ़ाई चलती रही। मैंने प्रोजेक्ट उच्च विद्यालय बड़कियारी से 2004 में मैट्रिक पास किया। आगे एम.ए. तक की पढ़ाई सिदो कान्हू विश्वविद्यालय, दुमका से पूरी की।

इंटर पास करने के पश्चात मैं एक कंपनी से जुड़कर कार्य करने लगी। मानदेय के रूप में 1000 रु. मिलता था। वर्ष 2013 में मेरी शादी हो गई। यहां भी घर का सारा काम मुझे ही करना पड़ता था। हालांकि मेरी एक ननद घर पर ही रहती थी। मेरी गोतनी तो मुझसे ठीक ढंग से बात भी नहीं करती थी। इतना काम करने के बावजूद मुझे ठीक ढंग से खाना भी नहीं मिलता था। इसलिए जब मेरा बच्चा होने वाला था तो मैं मायके आ गई। बच्चा होने के पन्द्रह दिन बाद ही मेरी सास मुझे वापस मेरे ससुराल सुसनीबाद ले आई। चार दिन भी नहीं बीते कि मुझे अलग कर दिया गया। हम दोनों पति-पत्नी मजदूरी कर किसी तरह अपना गुजारा करने लगे। जब बच्चा छः महीने का हुआ तो मैं एक संस्था में जुड़कर कार्य करने के लिए सोची। परंतु यहां भी भैंसुर ने अपनी चालबाजी दिखाई। संस्था वालों को बोला कि इसका छोटा बच्चा है तो वह काम नहीं कर पायेगी। और गोतनी को काम पर लगा दिया। दुःख तो बहुत हुआ पर मन मसोस कर रह गई।

उसके बाद पाकुड़ जिला के आमड़ापाड़ा प्रखंड के सरकारी विद्यालय के ड्रॉप आउट बच्चों को पढ़ाने लगी। मुझे महीना 4500 रु. मिलने लगा। यहां मैंने करीब तीन साल तक कार्य किया। फिर जब दूसरा बच्चा होने को था तो वापस सुसनीबाद (ससुराल) आ गई।

जब मेरा छोटा बच्चा 4 महीने का था उसी समय मुझे संवाद संस्था के बारे में रफीक से पता चला। मैंने उस पर कुछ खास ध्यान नहीं दिया। दुबारा जब उन्होंने मेरे काम करने के बाबत मेरे पति से पूछा तो मेरे पति एवं मैंने हां बोल दिया। फिर संवाद के बारे में जानकारी प्राप्त की और कार्य करने के लिए आवेदन दिया। लिखित एवं मौखिक परीक्षा देने के बाद मेरा चयन संवाद में हो गया। वर्ष 2018 से मैं संवाद से जुड़कर कार्य करने लगी।

संवाद से जुड़कर मैंने बहुत सी जानकारी प्राप्त की। ग्रामसभा, उनकी स्थायी समिति आदि के बारे मुझे कुछ ज्ञान नहीं था। यहां जुड़ने के बाद प्रशिक्षण एवं कार्यशालाओं के माध्यम से इन पर समझ बनी। पुराने एवं अनुभवी साथियों के सहयोग से मैं अपना कार्य करने लगी।

संस्था से जुड़ने के बाद मेरे अंदर काफी बदलाव आया। पहले मैं लोगों से बात नहीं कर पाती थीं, अब बेझिझक बात करती हूं। कहीं भी अकेले आ जा सकती हूं। आदिवासी हूं, पर आदिवासी जीवन दर्शन को नहीं जानती थी। यहां से जुड़ने के पश्चात

इन सब चीजों से साक्षात्कार हुआ। जल, जंगल, जमीन की अहमियत क्या है, इसे जाना। अपने अंदर आत्मविश्वास भी आया कि मैं भी कुछ कर सकती हूं। मुद्दों को समझने एवं उसके विश्लेषण की क्षमता बढ़ी। कार्यक्षेत्र में सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में मेरी पहचान बनी।

मैं आगे भी संवाद से जुड़कर कार्य करना चाहूंगी, ताकि मेरी भी क्षमता विकास का सिलसिला चलता रहे।

❒❒

एक मां की संघर्ष-गाथा

- वीणा वर्मा

"मां शब्द अपने आप में परिपूर्ण है। दुनिया में हम चाहे कितने भी रिश्ते से क्यों नहीं बंधे हुए हों, लेकिन मां के बगैर हमारा जीवन अधूरा ही रहता है। हर रिश्ते को आप से कुछ पाने की आस रहती है लेकिन एक मां अपनी संतान को जीवनपर्यन्त सिर्फ देना जानती है। मां भूखी सो सकती है लेकिन कभी भी अपने बच्चे को भूखा नहीं रख सकती है। चाहे उसके लिए उसे कुछ भी करना क्यों न पड़े। अपने बच्चे के भूख की खातिर इंसान क्या वह ईश्वर से भी लड़ सकती है। मां की ममता अपने बच्चों की खातिर जीने का जुनून रखती है। एक मां की ममता अपने बच्चों के लिए क्या-क्या नहीं करवाती है। किसी ने ठीक ही कहा है कि मां अपने बच्चों की खातिर हर मुश्किलों से लड़ जाती है। मैंने भी अपने बच्चों की परवरिश के लिए घर की दहलीज पार की। काम की तलाश में इधर-उधर भटकी। कभी स्कूल में पढ़ाया तो कभी सर्वे का काम किया। लंबे संघर्ष कर आज एक मुकाम पर पहुंची हूं। बच्चों को भी उनके मंजिल तक पहुंचाने में कोई कसर नहीं छोड़ी।"

मां जलेश्वरी वर्मा एवं पिता बसंत लाल वर्मा की इकलौती पुत्री मैं वीणा वर्मा हूं। मेरी मां हमेशा मुझे कहती कि तुम सबों ने आने में बहुत इंतजार करवाया क्योंकि मां-बाबा की शादी के ग्यारह साल बाद मैं पैदा हुई थी। पहली संतान होने के कारण मुझे मां-बाबा का ढेर सारा दुलार मिला। बाद में मेरे तीन भाई हुए लेकिन मेरा महत्व कम नहीं हुआ। मेरे जन्म के बाद ही पिताजी सरकारी शिक्षक बने। पिताजी कहते जब से वीणा मेरे जीवन में आई है सबकुछ अच्छा ही हो रहा है। शिक्षक होने के कारण अपने गांव चरपा के सभी बच्चों को पढ़ाई करने पर जोर देते थे। बाबूजी गणित के शिक्षक

थे। रोज सुबह घर पर 6 से 7 बजे तक बच्चों को गणित पढ़ाते और फिर 7.30 बजे ट्रेन पकड़कर ड्यूटी के लिए गिरिडीह चले जाते। हमेशा ही मधुपुर में भाड़ा घर लेकर मां को अपने पास रखा ताकि अपनी नौकरी भी ठीक से कर सके और अपने छोटे भाई को अपने पास रखकर पढ़ा सके। उन्होंने बी.पी.एस. नाम से एक विद्यालय की स्थापना डॉक्टर हरीबाबू गली मधुपुर में की। विद्यालय भाड़े के भवन में चलता था। मेरी स्कूली शिक्षा वहीं से शुरू हुई। मैं बहुत छोटी थी इसलिए मेरे घर के सामने बी.डी.ओ. साहब (ब्रज किशोर) की पुत्री रूबी दीदी मेरी ऊंगली पकड़कर ले जाया करती थी। छुट्टी के दिनों में बाबूजी बाजार घुमाने ले जाते और समोसा, मिठाई, कचौड़ी खिलाया करते थे। ड्यूटी का समय छोड़कर मैं हमेशा उनके साथ रहती।

बाबूजी ने धीरे-धीरे कुण्डू बंगला, मधुपुर में अपना खपरैल का घर बनवाया और उसमें हमलोगों को रहने के लिए ले गये। दो बड़े-बड़े कमरे और बरामदा में स्कूल चला करता। स्कूल छठी क्लास तक ही था। मैं छठी कक्षा तक बी.पी.एस. विद्यालय, कुण्डू बंगला, मधुपुर में पढ़ी। सातवीं कक्षा से मैं अंची देवी सर्राफ बालिका उच्च विद्यालय, मधुपुर पढ़ने जाने लगी। मैं जब नवीं क्लास में पहुंची तो दिन कैसे गुजर जाता था पता ही नहीं चलता था। खेलने का समय खत्म हो गया था। सुबह सात से आठ बजे तक नथुनी सर के पास संस्कृत और आठ से नौ बजे तक ढेमन सर के पास बाकी विषय का ट्यूशन पढ़ने जाया करती। गणित कभी भी मुझे एक बार में नहीं समझ आता था। सच कहें तो मैं पढ़ने-लिखने में बहुत ही कमजोर थी। दस से चार बजे तक स्कूल में पढ़ाई करती। साढ़े चार से साढ़े पांच बजे तक सिलाई-कटाई का प्रशिक्षण लेने आर्य समाज थाना रोड जाती थी। पूरे भाग दौड़ वाली दिनचर्या हो गई थी। अपने परिवार में मैट्रिक पास करने वाली मैं पहली लड़की थी। मैट्रिक पास होने पर गर्व महसूस हो रहा था। चूंकि मेरी चचेरी बहन और सहेली पूनम प्रथम श्रेणी से पास हुई तो घर वालों ने नसीहत दे डाली कि दूसरे से कुछ सीखो। पर मैं खुश थी। मैट्रिक पास कर लेना मेरे लिए बड़ी बात थी। मधुपुर महाविद्यालय में मैंने इंटर में दाखिला लिया। कॉलेज जाने के बाद से ही घर में मेरी शादी के चर्चे शुरू हो गये। कभी-कभी छुट्टियों में मैं नानी घर या अपने गांव चरपा जाती तो मेरी शादी के चर्चे शुरू हो जाते। इसी कारण मैंने नानी घर और गांव चरपा जाना छोड़ दिया। कॉलेज की पढ़ाई के साथ-साथ मैं टाईपिंग भी सीखने लगी।

फिर आमतौर पर जैसा हर लड़की के साथ होता है मेरे साथ भी हुआ। इंटर की

फाइनल परीक्षा देने के बाद मेरी शादी तय कर दी गई। न ही मुझसे मेरे निर्णय के बारे में पूछा गया और न ही कुछ बताया गया। लड़का कैसा है, कहां का है, क्या करता है - मुझे कुछ मालूम नहीं था। शादी का कार्ड छपने पर मुझे इन सब बातों का पता चला। मैं काफी असमंजस में थी। मेरे राय के बगैर ही शादी तय हो गई। मैं तो लड़के का केवल पासपोर्ट साइज फोटो ही देख पायी। जयमाला के समय ही उनकी (रवीन्द्र प्रसाद वर्मा) झलक देखने को मिली।

शादी के बाद जब ससुराल पहुंची तो परिवार का माहौल कुछ अलग ही था। मेरे ससुर के कपड़े की दुकान थी। खेती बाड़ी भी थी जो घर से काफी दूर था। अत: खेती बाड़ी का कार्य ससुर के छोटे भाई करते थे। गांव की सारी संपत्ति छोटे चाचा ससुर की देख रेख में था। मेरे पति के हाथ में एक भी पैसा नहीं आता था। बचपन की पिलाई घुट्टी इन दिनों काम आई कि लड़कियों को हर हाल में एडजस्ट करना होता है सो धीरे-धीरे मैं एडजस्ट होने लगी। घर खर्च ससुर चलाते थे। ससुराल में दो वक्त ही खाना बनता था। सुबह का खाया रात तक मैं भूख से बिलख जाती थी। मेरे देवर ननद दुकान से कुछ-कुछ लाकर खाते रहते थे पर अपने पास पैसा नहीं होने के कारण मैं भूखी रहती। इन सब कारणों से मेरा मन हमेशा चिड़चिड़ा सा रहने लगा। मेरे पिताजी जब मिलने आते तो मैं रो पड़ती पर किसी से कुछ नहीं कहती। पिताजी शायद समझ गये थे इसलिए उन्होंने एक बक्से में खाने पीने का सामान, साबुन, सर्फ भर कर ला देते थे। जरूरत पड़ने पर मां भी हाथ में कुछ पैसे दे देती थी। इससे किसी तरह मेरा गुजारा तो हो जाता पर इससे मेरे पति को कोई फर्क नहीं पड़ता।

जब मेरी बेटी ने जन्म लिया तो मेरे ऊपर काम करने के प्रेशर के साथ-साथ अपनी आर्थिक जरूरतों को भी पूरा करना था। मैं भूखे सो सकती थी, हर तकलीफ बर्दाश्त कर सकती थी, परंतु बच्ची को तो भूखा नहीं रख सकती थी। मैंने घर की दहलीज लांघी और एक प्राइवेट स्कूल में पढ़ाने लगी। घर बाहर दोनों जगहों की जिम्मेवारी उठाना कठिन तो लगता पर बच्ची का ध्यान आता तो सब कुछ भूलकर फिर कार्य करने लगती। वर्ष 1998 में मेरे बेटे का जन्म हुआ तो मुझे स्कूल छोड़ना पड़ा। दो बच्चों की परवरिश, घर और बाहर का काम करना कठिन हो गया। तब मेरे पति रोलिंग मिल में काम करने लगे। इससे घर की जरूरतें तो पूरी हो जा रही थी पर पति का काम खतरों से भरा था। वे हमेशा ही हाथ पैर जलाकर घर आते परंतु दूसरे विकल्प के बिना काम छोड़ा भी नहीं जा सकता था। मैं हमेशा चिंतित रहती। फिर हालात

को देखते हुए घर से बाहर कदम रखा और स्कूल में पढ़ाने लगी। लेकिन मन में कुछ अलग करने का ख्याल आते रहता। फिर मैं सरकारी योजना ''स्पीड'' का कार्य स्थानीय संस्था से जुड़कर करने लगी। इस कार्य में माह में 15-20 दिन काम मिलता। यह कुछ जम नहीं रहा था। एक प्रशिक्षण के दौरान 'जुड़ाव' संस्था के निदेशक घनश्याम जी से मुलाकात हुई। मुझे काम की नितान्त आवश्यकता है यह जानकर उन्होंने मुझे 'जुड़ाव' से जोड़ा। मैं 'जुड़ाव' से जुड़कर कोडरमा में कार्य करने लगी। कोडरमा में कार्य करने में काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ता पर आर्थिक मजबूरी के कारण काम करती रही। एक साल काम करने के बाद संस्था की विभिन्न गतिविधियों एवं प्रक्रियाओं से जुड़ी। उसी दरम्यान झारखंड यात्रा पर जाने का मौका मिला। यात्रा के दौरान झारखंड को समझने का अवसर मिला। 'वर्ल्ड सोशल फोरम' जैसे बड़े कार्यक्रमों में भी जाने का अवसर मिला। संस्था से जुड़कर मेरे बौद्धिक एवं नेतृत्व क्षमता का विकास होने लगा। संस्था से लंबे समय तक जुड़कर कार्य करने के बाद ग्राम सभा की समझ बनी। महिला अधिकार, लैंगिक समानता, पर्यावरण, ग्रामीणों के अधिकार जैसे मुद्दों को जाना, समझा। पंचायत चुनाव कराने को लेकर चले अभियान में भी भाग लिया।

संस्था से जुड़ने से मेरे में भी राजनीतिक चेतना का विकास हुआ। मुझे लगने लगा कि अगर समाज में बदलाव लाना है तो जनप्रतिनिधि बनने से यह कार्य थोड़ा सुगम हो सकता है। अत: पहली बार जब 2010 में झारखंड में पंचायत चुनाव हुआ। मैं उदनाबाद पंचायत, गिरिडीह सदर से मुखिया प्रत्याशी के रूप में चुनाव में खड़ी हुई। चुनाव में हार गई पर इसका लाभ यह हुआ कि पूरे पंचायत में सशक्त महिला के रूप में मेरी पहचान बनी।

चुनाव के बाद 'संवाद' से जुड़कर ग्राम सभा सशक्तीकरण, टिकाऊ आजीविका, महिला अधिकार आदि मुद्दों पर सघन रूप से जागरूकता का कार्य संस्था के माध्यम से करने लगी। समाज में सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में पहचान बनी। महिला स्वयं सहायता समूह बनाकर महिलाओं को घर से बाहर लाने का काम किया। महिलाएं आपस में पैसा जमा कर अपने छोटी मोटी जरूरतों को पूरा करने लगी। अब महिलाएं न सिर्फ पैसा जमा करती हैं बल्कि बैठक में सामाजिक मुद्दे पर भी चर्चा करती हैं। पहले महिलाएं ग्राम सभा बैठकों में नहीं आती थी पर अब वे आती हैं और सक्रिय भागीदारी निभाती हैं तथा मुखर होकर अपनी बातों को रखती हैं। इन सबसे अपने मन को खुशी मिलती है एवं आत्मविश्वास भी बढ़ता है कि समाज के लिए कुछ कर पा रही हूं।

अब कहीं भी, कभी भी अकेले आ जा सकती हूं। प्रशिक्षणों, कार्यशालाओं से अपने अंदर मुद्दों को समझने एवं उसके विश्लेषण की क्षमता बढ़ी है। सरकारी पदाधिकारियों से डायलॉग कर अपने क्षेत्र की समस्या से उनको अवगत करा पा रही हूं। क्षेत्र के लोगों का विश्वास जीतने में भी सफलता पाई हूं। नयी-नयी बातों की जानकारी, नये नये लोगों से मिलने का मौका, अपने संपर्क का दायरा बढ़ाना यदि संभव हो पाया है तो संस्था के कारण ही। अगर मैं संस्था से न जुड़ती तो शायद परिवार चलाना तो कष्टकर होता ही अपना विकास भी नहीं हो पाता। स्व विकास की यात्रा में आत्मविश्वास भी एक महत्वपूर्ण घटक है। आत्मविश्वास आने पर आप भय एवं झिझक को पीछे छोड़ते हैं। कार्य को सुचारू रूप से कर पाते हैं। आज सबों के सहयोग से ही आगे बढ़ने का सिलसिला जारी है। यदि इसी तरह सहयोग एवं संबल मिलता रहे तो न ही ये कदम थकेंगे और न रूकेंगे।

❐❐

अस्तित्व के संघर्ष में छिपा होता है जीवन का उत्कर्ष

- सीमा

"मध्यमवर्गीय भारतीय परिवार में एक लड़की का पालन-पोषण इस तरह किया जाता है कि वह शादी के बाद एक लंबा समय दबावों को झेलने में बिता देती है। नये परिवार के नये सदस्यों के अनुरूप अपने को ढालने की कोशिश करती रहती है। उसे यह पहचानने में कई साल लग जाते हैं कि उसका भी अपना एक अस्तित्व है। अपनी पिछली पहचान को पूरी तरह भुलाते हुए वह अपने को 'आदर्श' सिद्ध करने में पूरी ताकत लगा देती है। कुछ लड़कियां अपने इसी 'आदर्श' स्वरूप में ही अपने जीवन की सार्थकता ढूढ़ लेती हैं। अपने परिवार के लोगों को खुश रखना ही उनका एकमात्र उद्देश्य होता है। कुछ ऐसी भी होती हैं जो अपनी जिंदगी के महत्वपूर्ण साल इसमें खपा देने में असफल कोशिश करती है। फिर भी उसे घुसपैठिये का ही दर्जा दिया जाता है। इसके बाद शुरू होती है उसकी अपने अस्तित्व, अपनी पहचान, अपनी आकांक्षाओं की लड़ाई, जिसे हर लड़की अपने तरीके से लड़ती है और अपनी आजादी हासिल करती है। मैंने भी यह समझ लिया कि शादी के बाद अपने हालात से मुझे खुद ही जूझना है। अपनी निजी तकलीफ से माता-पिता को परेशान नहीं करना चाहती थी। पर कुछ था जिसे मैं हर हाल में मां-बाबा तक पहुंचाना चाहती थी।"

मेरा नाम सीमा है। मैं सुधाकर मिश्र एवं कान्ता सुधाकर की पुत्री हूं। पहले मैं अपने मां-बाबा एवं दो भाईयों के साथ भागलपुर में रहती थी। भागलपुर में ही मेरी शादी मार्च 1986 में हुई। मेरे घर का माहौल शिक्षित एवं साहित्यिक है। ससुराल का माहौल

बिल्कुल ही अलग था। शहर में होते हुए भी वह मेरे मायके से भिन्न था। वहां इस बात का ज्यादा महत्व था कि कौन सी बहू अपने मायके से क्या कुछ और कितना दहेज लायी है। इसी बात पर चर्चा वहां होती रहती थी। मेरे मायके वालों ने भी अपनी क्षमता के अनुसार बहुत कुछ दिया था। लेकिन ससुराल वालों का पेट ही नहीं भरता था। मेरे दिन भी किसी तरह कट रहे थे। एक साल बाद मेरी बेटी का जन्म हुआ। बेटी के जन्म पर कोई खुशी नहीं मनायी गई। पति के आर्थिक उपार्जन का कोई कुछ विशेष स्रोत नहीं था। संयुक्त परिवार था तो किसी प्रकार गुजारा हो जाता था। पैसे की कमी के कारण हो या असंतुष्टि कहा जाय अब धीरे-धीरे प्रताड़ना का दौर शुरू हो गया। मैंने एडजस्ट करने की बहुत कोशिश की। किसी तरह मैंने पांच साल तक यह सोच कर सब कुछ सहा कि धीरे-धीरे सबकुछ ठीक हो जायेगा। लेकिन जब बात सहने के बाहर हो गयी तो मैंने सबकुछ छोड़ कर अपनी बेटी को लेकर मायके चली आई।

आम तौर पर जब कोई बेटी अपना घर छोड़ कर आती है तो मां-बाप यह कह कर दोबारा वापस भेज देते हैं कि अब वही तुम्हारा घर है। लेकिन मेरे साथ ऐसा कुछ नहीं हुआ। इस दुःख की घड़ी में मां-बाबा ने गले लगाया। अब उनके ऊपर मेरे साथ मेरी बेटी की जिम्मेदारी भी थी। जिन्दगी पूरी तरह से बिखर चुकी थी। पति का साथ छूटा, अपना घर छूटा और साथ-साथ अपनी और अपनी बेटी की जरूरतों का सामान भी वहीं छूट गया। मुझे सब कुछ फिर से शुरू करना था। अब मुझे अपनी बेटी के लिए जीना था।

अब मैं अपने लिए रोजगार तलाशने लगी क्योंकि छोटी-छोटी जरूरतों के लिए मां-बाबा पर निर्भर नहीं रहना चाहती थी। कई जगह कोशिश करके काम किया भी, लेकिन मेरे पति मेरे खिलाफ वहां के मैनेजमेंट को भड़का देते थे, फिर मेरा काम छूट जाता था। काम की तलाश करते हुए मुझे एक मिशनरी स्कूल में काम मिला वहां की प्रिंसिपल को मैंने अपनी सारी बातें पहले से ही बता दी। मेरे पति वहां भी गये लेकिन प्रिंसिपल ने उसे वहां से भगा दिया। और मैं वहां पर एक साल तक काम कर पायी। धीरे-धीरे जिन्दगी पटरी पर लौटने लगी।

इस पूरे संघर्ष के दौरान केस मुकदमा भी हुआ लेकिन कलाकेन्द्र के साथी उदय जी, प्रवीर, ललन, योगेन्द्र जी, प्रभाकर जी ने बहुत साथ दिया और इस बात का हौसला दिया कि अन्याय सहना भी गलत है, हर किसी को जीने का हक है।

1994 के अक्टूबर माह में बाबा सरकारी नौकरी से रिटायर हो गये। अब हमें

अपना क्वार्टर छोड़ कर किराये के मकान में जाना था। हम लोग 1994 के पहले भी मधुपुर घूमने के लिए आये थे। घनश्याम दा से भागलपुर के कलाकेन्द्र में ही मुलाकात हुई थी। हमलोगों ने भागलपुर छोड़ने का मन बना लिया था। घनश्याम दा से इस विषय पर मेरे बाबा ने बात की तब उन्होंने मधुपुर आने की सलाह दी। हमलोगों को पहले से ही मधुपुर पसंद भी था और हमलोग 28 दिसम्बर 1994 को मधुपुर आ गये।

28 दिसम्बर 1994 की शाम को मैं अपने मां-बाबा एवं पांच वर्ष की बेटी के साथ मधुपुर स्थित जुड़ाव परिसर में आई। जुड़ाव परिसर बहुत बड़ा है। इस कोठी को हवेली भी कहा जा सकता है। इसी परिसर में हमलोगों के रहने की व्यवस्था घनश्याम दा ने की थी। उन दिनों हमलोगों के पास रहने के लिए कोई घर नहीं था। लेकिन घर की बात पहले हो चुकी थी। 28 दिसम्बर 1994 से 7 मार्च 1995 तक हमलोग इसी परिसर में रहे। 8 मार्च 1995 को हमलोग कालीपुर टाउन (मोहल्ला), मधुपुर स्थित अपने निजी आवास में रहने लगे।

जुड़ाव में उन दिनों 'प्रेरणा भारती' संस्था की कल्याणी दीदी से हमलोगों का परिचय हुआ। बहुत अच्छा लगा। उन दिनों प्रेरणा भारती संस्था की ओर से कई प्रशिक्षण कार्यक्रम चल रहे थे। हमलोग सभी प्रशिक्षण में शामिल होते थे। प्रशिक्षण में शामिल होना मेरे लिए एक नया अनुभव था। नई बातों को सीखना, नई जानकारी से अवगत होना सबकुछ बिल्कुल नया और सकारात्मक था।

ठीक से तारीख याद नहीं है लेकिन मार्च के पहले सप्ताह में (1995) जुड़ाव संस्था का रजिस्ट्रेशन हुआ। धीरे-धीरे काम शुरू हुआ। कुछ समय बाद कार्यकर्ता निर्माण प्रशिक्षण शिविर शुरू हुआ। इसमें भाग लेती और विभिन्न प्रकार के ज्ञानवर्द्धक कार्यक्रमों में भी भाग लेने लगी। यह प्रशिक्षण एक प्रकार से क्लास, नाटक, गीत वगैरह के माध्यम से भी होता था। प्रशिक्षण का मुख्य भाग सामूहिक अध्ययन का होता था।

उन दिनों प्रेरणा भारती के कुछ कार्यक्रम जगदीशपुर में भी होते थे और मुझे भी उसमें जाना पड़ता था। इसके पहले मैं ट्रेन से कभी अकेले सफर नहीं की थी। इस परिस्थिति में मुझे यही सुरक्षित लगा कि मैं पहले प्रेरणा भारती के कार्यालय जाऊं और फिर सबके साथ निकलूं और मैंने वही किया। आज जब यह बात सोचती हूं तो हंसी आती है कि कितना आसान सफर मुझे कितना मुश्किल लगता था।

जुड़ाव के साथ अभियान नाम से भी एक अभिक्रम की शुरूआत हुई थी।

अभियान की ओर से एक पदयात्रा का आयोजन हुआ। यह पदयात्रा चतरा से रांची तक की थी। इस पदयात्रा की शुरूआत देश के जाने माने पर्यावरणविद् श्री सुन्दरलाल बहुगुणा द्वारा हरी झंडी दिखाकर किया गया। देश की इतनी बड़ी हस्ती को कभी सामने से देख पाउंगी सोचा भी नहीं था लेकिन मैंने देखा। खैर पदयात्रा की शुरूआत हुई। पदयात्रा के दौरान झारखंड के सुदूर इलाकों से गुजरना हुआ। झारखंड में नदी, पहाड़, जंगल, झरना यह सब इतना खूबसूरत है यह मैंने नजदीक से देख कर जाना और महसूस किया। प्रकृति के इस सौंदर्य से रूबरू होना एक सुखद अनुभव है, इसे बयां करना मुश्किल है। इसे सिर्फ महसूस किया जा सकता है।

शुरू से ही मुझे रिपोर्टिंग का काम मिला था और इस काम में मुझे मन भी लगता था। आर्थिक उपार्जन के साथ-साथ एक पहचान भी बनने लगी थी। धीरे-धीरे गांव, शहर, समाज सभी कुछ समझ में आने लगा था। जुड़ाव का काम पूरे झारखंड में फैल गया था। काम करने के दौरान कई महिला साथियों से दोस्ती हुई। कुछ साथी दूसरी जिम्मेवारी में चली गई और कुछ आज भी साथ काम कर रही हैं।

परिवर्तन की बात अगर करें तो आर्थिक रूप से कुछ सहारा मिला हालांकि बहुत कम ही मानदेय था इससे मैं अपनी बेटी की स्कूल फीस भर पाती थी। साथ ही लोगों से बात करने में जो झिझक थी वह भी खत्म हुईं। अपनी बात को रखने में पहले पैर कांपता था फिर धीरे-धीरे यह सब कम हुआ। धीरे-धीरे आत्मविश्वास बढ़ा।

काम करने के बाद मुझमें मुख्य रूप से चार पहलू में विकास हुआ - पहला आर्थिक, दूसरा सामाजिक, तीसरा बौद्धिक और चौथा राजनैतिक। सामाजिक विकास की अगर बात करें तो जब हम समाज से जुड़ते हैं तो समाज भी हमसे कुछ उम्मीद रखता है विशेषकर महिलाएं। पहले जब हमलोग महिलाओं की बैठक बुलाते थे तो घर-घर जाकर बुलाना पड़ता था। लेकिन धीरे-धीरे महिलाएं स्वयं जागृत होती गईं और अपनी पहचान बनाने लगी। यह कहना गलत नहीं होगा कि समाज में महिलाओं को आगे बढ़ाने में संस्था की बहुत बड़ी भूमिका होती है और इसका ही परिणाम है कि हाल के पंचायत चुनाव में 58 प्रतिशत महिलाएं जीत कर आई हैं। यह सब एक लम्बे समय तक जागरूक करने की प्रक्रिया का ही परिणाम है। हम यह कह सकते हैं कि एक संस्था के कार्यकर्ता के रूप में यह एक बड़ी उपलब्धि है।

❑❑

अंधेरे को क्यों धिक्कारें : अपने भीतर का दीप जला लें

- सालगे मार्डी

"शिक्षा और बेहतर जिंदगी परस्पर एक-दूसरे की पूरक हैं। शिक्षा के बिना स्वतंत्रता निरर्थक होती है। जिस प्रकार आधुनिक युग की सुख-सुविधाएं लोगों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं, उसी तरह जिंदगी की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी शिक्षा अनिवार्य है। आज सिर्फ शहरों में ही नहीं बल्कि गांव के लोगों में भी इसकी जरूरत महसूस की जा रही है। क्योंकि गांव का चेहरा ग्रामीण ही बदल सकते हैं न कि अधिपति वर्ग और सत्ता के दलाल। इसीलिए मैंने अपनी पढ़ाई में बाधा आने के बावजूद भी सीखने का क्रम जारी रखा और उसमें कुछ हद तक सफलता पाई। क्योंकि अंधेरे को कोसते रहने की बजाय एक दीप जला लेना बेहतर होता है।"

मेरा जन्म पूर्वी सिंहभूम के मुसाबनी प्रखंड के मेड़िया गांव के एक किसान परिवार में हुआ। मेरी मां रायमत हांसदा और पिता करण हांसदा हैं। मैं अपने माता-पिता की इकलौती संतान हूं। मेरे परिवार में माँ पिताजी के साथ चाचा-चाची, दादी, परदादी भी रहते थे। परिवार में एकलौती संतान होने के कारण पूरे परिवार का लाड़ प्यार मिला। मुझे कभी भी लड़की हूँ इसका एहसास तक नहीं होने दिया। मेरी माँ खुद पढ़ी-लिखी नहीं थी। इसलिए उनका सपना था कि मैं खूब पढ़ूं। स्कूल जाने के उम्र के साथ ही मेरा दाखिला स्कूल में करा दिया गया। मैं भी नियमित स्कूल जाती थी। एकलौती संतान होने से परिवार में कोई रोक टोक नहीं थी। मैं अपने रुचि के अनुसार खेलती या काम करती। लड़की होने का एहसास तो मुझे तब हुआ जब मैं 12-13 वर्ष की हो गई। मैं

बड़ी हुई भी नहीं कि परिवार से ज्यादा करीबी रिश्तेदारों को मेरी शादी कराने की चिंता होने लगी। मैं जब 9वीं कक्षा में थी तभी से मेरे घर कुछ-कुछ दिनों में रिश्ते आने लगे। कुछ दिन तक तो माँ-पिताजी बातों को टाल देते थे। बाद में माँ को भी लगा बेटी की शादी करा ही देनी चाहिए। मेरे दिल से इच्छा तो नहीं थी कि मैं इतनी जल्दी शादी करूँ। पर परिवार के पास बोल भी नहीं सकती थी कि मैं शादी नहीं करूँगी। क्योंकि उस समय मेरी उतनी समझ ही नहीं बनी थी। मुझे इतना पता था कि मैं लड़की हूँ तो एक न एक दिन मेरी शादी होनी ही है। देखते-देखते जब मैं 10वीं कक्षा में आई तो मेरी शादी भी तय कर दी गई। परिवार वाले लड़के को देख आए और शादी तय हो गई। तब किसी तरह साहस जुटाकर माँ के पास मैं अपनी इच्छा व्यक्त कर पाई। माँ से बोली मैं शादी तो करूँगी पर शादी के बाद मेरी पढ़ाई को न रोका जाय। मेरी इच्छा है मैं कम से कम मैट्रिक तो पास कर लूँ। मैं दसवीं की पढ़ाई पूरी करना चाहती हूं। ये बातें सासुराल वालों के पास गई तो उधर से भी सहमति मिल गई कि मैं आगे पढ़ सकती हूँ। फिर क्या था मेरी शादी पोटका प्रखंड के गोड़ग्राम गाँव में कर दी गई। शादी के बाद मैं फिर से स्कूल जाने लगी और मेरी पढ़ाई दसवीं की पूरी हुई। मैंने मैट्रिक द्वितीय श्रेणी से पास की। शादी की बाद की पढ़ाई में मुझे एक बात महसूस हुई जो पढ़ाई मैं पहले स्वतंत्र मन से पढ़ती थी, वह पढ़ाई शादी के बाद नहीं हो पाई। कभी मायके तो कभी ससुराल दो परिवार की ओर मन बँट गया। जिम्मेवारी भी बढ़ गई। नये परिवार में अपने को ढालने की प्रयास करती थी। ससुराल में जाती तो घर के कामों की जिम्मेदारी इतनी बढ़ जाती कि पढ़ने के लिए समय ही नहीं मिलता। मेरी शादी जुलाई 1983 को हुई। मैट्रिक की परीक्षा मैंने 1984 में लिखी और पास भी हुई। उसके बाद पति ने ही मेरा दाखिला लाल बहादुर, शास्त्री कॉलेज, करनडीह, जमशेदपुर में कर दिया। इंटर प्रथम ईयर में कॉलेज जाने लगी। पर जिस तरह नियमित कॉलेज जाना चाहिए वैसा तो कॉलेज जाना नहीं हो पाया। इंटर सेंकेड इयर में मेरा शिक्षिका प्रशिक्षण के लिए चयन हुआ। इंटर का फाइनल परीक्षा नहीं लिख पायी। मैंने प्रशिक्षण के लिए प्राथमिक शिक्षिका प्रशिक्षण महाविद्यालय में नामांकन ले लिया। कुछ दिन तो मैंने बाहर से ही प्रशिक्षण के लिए आना जाना किया। पर परसुडीह से गम्हरिया प्रतिदिन जाने आने में परेशानी होती थी। कभी बस मिलती, कभी नहीं। तबतक मेरी बेटी डेढ़ वर्ष की हो चुकी थी। तब माँ ने तय किया वो मेरी बेटी को अपने पास संभालेगी और मैं कॉलेज हॉस्टल में

ही रहकर प्रशिक्षण पूरा करूँ। शिक्षिका प्रशिक्षण में मैं दो वर्ष महाविद्यालय हॉस्टल में ही रहकर पढ़ाई पूरी की। प्रशिक्षण पूरा करने के बाद मैं घर आ गई। घर आने के बाद मेरी दूसरी संतान मेरा बेटा का जन्म हुआ। उसके बाद तो फिर घर गृहस्थी संभालने में ही मेरा समय जाने लगा। इंटर पढ़ाई को मैं पूरी करूँ यह तक नहीं सोच पाई। मेरे पति शादी के पूर्व से ही 74 आंदोलन से ही समाज परिवर्तन के लिए आंदोलन में कूद चुके थे। इसलिए परिवार का फिक्र बहुत नहीं था। मैं ये तो नहीं कह सकती कि वो हमें देखते नहीं थे पर पूर्ण जिम्मेदारी की चिंता भी नहीं था। वो सप्ताह, महीना में एक दो दिन के लिए आते फिर अपने काम में निकल जाते। बहुत दिन तक तो मुझे उनका काम ही समझ में नहीं आया कि वे काम क्या करते हैं। वो हमें बच्चों के साथ मायके में ही छोड़ आते। धीरे-धीरे मैं मूसाबनी में ही रहने लगी। खाने की कमी तो घर में नहीं थी पर बच्चों के लिए जरूरत के कुछ-कुछ सामान खरीदने के लिए पैसों की जरूरत महसूस होने लगी। न्यूनतम खर्च के लिए भी मेरे पास पैसे नहीं होते थे। पति से भी खर्च क्या मांगू वो तो समाज सेवा के लिए महीनों बाहर ही रहते। 1993 आते-आते मैं चार बच्चों की माँ बन चुकी थी। मुझे समझ में नहीं आता था कि मैं करूँ तो क्या करूँ। माँ पिताजी के ऊपर भी खर्च का बोझ डालना अच्छा नहीं लगता। तब मैंने बच्चों को ट्यूशन देना शुरू किया। घर में चाचा की सिलाई मशीन थी सो सिलाई कटाई भी सीखने लगी। खेती के काम में माँ-पिताजी का हाथ बंटाती ताकि हमारा न्यूनतम जो खर्च है उसको निकाल सकूँ। शिक्षिका प्रशिक्षण तो पूरा किए थे। काफी प्रयास के बाद भी शिक्षिका नहीं बन पाई। इस बीच पति कभी-कभार संस्था के कार्यक्रमों में कहीं-कहीं ले जाते। प्रारंभ में तो मुझे कुछ समझ में नहीं आता था। कई कार्यक्रमों में जाने के बाद ही मुझे समझ में आया कि आखिर लोग किस बिंदु पर चर्चा कर रहे हैं। उसके बाद से तो मैंने पति से अपेक्षा करना छोड़ दी। मैंने तय किया मैं ही अपने बच्चों को संभालूँगी और उनको समाज सेवा के काम के लिये पूर्ण रूप से छोड़ दिया। आंदोलन के कारण वो कभी जेल में तो कभी बाहर रहते। कभी कभार हमें देखने आ जाते थे। बच्चे जब छोटे थे उस समय तो पता नहीं चलता था खर्च के बारे में। पर जब बच्चे स्कूल जाने लगे तब खर्चा भी बढ़ने लगा। कभी कभार तो पति खर्चा दे देते पर नियमित रूप से नहीं दे पाते। बेटी को पहले तो इंगलिश मीडियम में डाली। कुछ दिन के बाद ही समझ में आ गया कि मुझे बच्चों को सरकारी स्कूल में ही पढ़ाना होगा। मेरे पास आय का कोई स्रोत ही नहीं था कि

मैं प्राइवेट स्कूलों का फीस दे सकूँ। फीस के अलावे भी कई तरह के खर्च होते हैं। फिर क्या था सभी बच्चों को सरकारी स्कूल में डाल दी। 1996 में मुझे 'जुड़ाव' में होने वाले कार्यकर्त्ता निर्माण प्रशिक्षण कार्यशाला में भेजा गया। उस समय मैं बहुत कम बोल पाती थी। लोगों के सामने तो बोलती बंद हो जाती थी। पर इस कार्यकर्त्ता निर्माण कार्यशाला में मुझे समाज को देखने का एक अलग नजरिया मिला। मेरे सोच में भी कई परिवर्तन आये। समाज के लिये कुछ करने के बारे में सोचने लगी। पर परेशानी एक ही थी अगर मैं पति की तरह समाज सेवा में निकल जाऊँगी तो मेरे बच्चों का क्या होगा। उनकी पढ़ाई लिखाई कैसे होगी। क्योंकि पढ़ाई-लिखाई के लिए तो नियमित आय की जरूरत होती है। माँ-पिताजी को भी कितना बोझ दें। पर मेरी माँ ने कभी भी मुझे महसूस ही नहीं होने दिया और उन्होंने बच्चों के खर्च में पूरा साथ दिया। बच्चों ने भी मेरी इस यात्रा में पूरा साथ दिया। उन्होंने जरूरत के सिवा अन्य चीज़ों की कभी माँग नहीं की। फुटबॉल भी खेलते थे तो कपड़ों का गोला बनाकर फुटबॉल का आकार बनाया और उससे खेला। अपनी जिम्मेदारी को पूरा करते हुए मैंने कभी घुटन या दबाव महसूस नहीं किया और मेरे बच्चों ने मुझे कभी महसूस नहीं होने दिया कि हम अभाव में जी रहे हैं। पारिवारिक काम करते हुए जो समय मिलता उसमें किसी-किसी कार्यक्रम में भाग लेती रहती। 1998 में हमने देखा कि मेड़िया गाँव में मेरी जैसी कई लड़कियाँ थी जो पढ़ी लिखी तो थी पर खेती के अलावे उनके पास कोई काम नहीं था। मैंने वैसे लड़कियों के साथ एक बैठक की। हमने निर्णय लिया कि एक समूह का गठन कर हम सब सामूहिक रूप से कुछ करेंगे। सुनिता मुर्मू और चिंता मार्डी के मशीन के सहारे लोहिया भवन का एक कमरा लेकर काम की शुरुआत हुई। कुछ लड़कियों को तो सिलाई सीखने में छ: माह से साल भर लगा। पर एक बात तो सही है प्रयास करने वालों की कभी हार नहीं होती। समूह की महिलाओं ने सिलाई सीखी और काम को आगे बढ़ाई। इसके साथ-साथ हमने गाँव के लिए भी कुछ-कुछ कामों को चिन्हित किए। जैसे समूह के हर सदस्यों के घरों में सामूहिक रूप से खेती का काम करना, गाँव के जंगल को जलावन लकड़ी के लिए काटने से बचाना। गाँव की और महिलाओं को भी समूह के काम से जोड़ना। अभी गाँव में 11 से 12 समूह बने हैं जो कि सामूहिक रूप से कुछ न कुछ करती है। उसके बाद गाँव के जो लोग नौकरी करते हैं उनके साथ भेंट होती तो बच्चों की शिक्षा को लेकर चर्चा होती। कुछ दिनों के चर्चा के बाद उनलोगों के सहयोग से बंद

पड़े विकास भवन में एक पुस्तकालय का निर्माण किया गया। इसके पूर्व ही 2001 से संस्था के कामों से जुड़ गई थी। इसलिए हमारी सामूहिक ग्रामीण महिला विकास मंच को 'जुड़ाव' से सामूहिक खेती के लिए ग्रुप सपोर्ट भी मिला। जिससे समूह की और दो साथी भी संस्था से जुड़ी। संस्था में जुड़कर मेरा 'स्व विकास' हुआ। हालांकि 'स्व विकास' कभी पूरा नहीं होता। आदमी हर समय कुछ न कुछ सीखता है। संस्था में मेरा काम पार्ट टाईम से शुरू हुआ। मुझे मानदेय के रूप 300 रुपये दिये जाते थे। फिर 500 फिर 1500 में आई। बाकी समय मैं सिलाई कटाई में देती। जिससे मेरी आमदनी 1000 से 1500 तक हो जाती थी। संस्था में आने के बाद शुरूआत के दौर में अपने को व्यक्त कर पाना बड़ा ही कठिन काम था। जानकारी रहते हुए भी लोगों के समक्ष व्यक्त ही नहीं कर पाती। पर धीरे-धीरे हर तरह की कामों के सीखते गई। कोई भी काम मन लगाकर से करो तो सफलता हासिल होगी ही। मैं कार्यक्रम से लेकर मंच में भी थोड़ा बहुत बोल ही लेती थी।

इसी दौरान चूँकि बच्चे बड़े हो रहे थे। उनकी पढ़ाई भी आगे बढ़ रही थी। यानी उनके खर्च में भी बढ़ोत्तरी हो रही थी। माँ बहुत ही परेशानी से गुजरने लगी। पर 'जुड़ाव' के साथियों ने मेरी परेशानी को समझा फिर मुझे 'जुड़ाव' के चल रहे ई.ई.डी. परियोजना से जोड़ा गया। तब मेरी परेशानी थोड़ी कम हुई। घर की जिम्मेवारी के साथ-साथ पूर्ण रूप से संस्था के कामों में लग गई। संस्था के सहयोग से मेरी अंतनिर्हित क्षमता बाहर आई। गाँव समाज में जागरूकता के काम के साथ मेरे'स्व'का भी विकास हुआ। शुरुआत के दिनों में मुझे अकेले जाने में भी डर लगता था। लगता था पता नहीं मैं कहाँ चली जाऊँगी। कोई साथ जाता तभी हिम्मत होती। काम करते-करते ऐसा समय भी आया जब मैं अकेले ही सफर करने लगी। मुझमें एक खासियत है- जब एक बार स्थान को देख लेती हूं तो उसको भूलती नहीं हूँ। इसलिए सही पता मिलने पर मैं वैसे जगहों पर पहुँच ही जाती। अकेले सफर के कई खट्टे मीठे अनुभव भी हैं। एक-एक सफर की शायद कहानी भी बन जाय। मैंने अपने अकेले का सफर मधुपुर जाने आने से ही शुरू किया। उसके बाद तो देश के सभी बड़े नगरों- दिल्ली, मुंबई, चेन्नई, बेंगलोर, कलकत्ता, गोवा जैसे महानगरों के कार्यक्रमों में शामिल हुई। वर्ष तो मुझे याद नहीं पर एक बार मुझे महिला सशक्तीकरण कार्यक्रम में अकेले गोवा जाना था। ऐसे तो इसके पहले भी गोवा जा चुकी थी पर साथियों के साथ ग्रुप में गई थी। टाटा नगर से मुंबई फिर मुंबई से गोवा तक पहुँचना

था। मन में थोड़ा डर भी था। फिर मैंने भी मन में ठाना कभी तो अकेले सफर करना ही पड़ेगा तो अभी ही क्यों नहीं? झारखंड के अन्य जिलों में तो हमेशा जाती रही पर गोवा इतनी दूर की लंबे सफर में घबराहट सी हो रही थी। जाने का दिन आया तो मैं तैयार होकर गोवा जाने के लिए निकल पड़ी। टाटानगर से मैं सुबह-सुबह शिवाजी टर्मिनल मुंबई स्टेशन पहुँची। दिन भर मुंबई स्टेशन में बैठे रहना बहुत कष्टकर लग रहा था। तब मैं अपने बैग को लॉकर रूम में रखकर गेटवे ऑफ इंडिया की ओर पैदल ही निकल गई। वहाँ बैठ कर मैंने समुद्र का नजारा देखा। उसी में दिन कैसे बीत गया मुझे पता ही नहीं चला। ट्रेन का टाइम होते ही मैं स्टेशन पहुँची। लॉकर रूम से बैग लेकर फिर गोवा की ट्रेन पकड़ ली। सुबह-सुबह गोवा पहुँची और कार्यक्रम में शामिल हुई। अकेले यात्रा कर समय पर कार्यक्रम में पहुंचने पर मुझे 'झारखंड की शेरनी' का नाम दिया गया। शायद इतना लम्बा सफर तय करना अकेले एक महिला के लिए बहुत बड़ा काम है। वरना टाटा से गोवा आने के लिए मुझे शेरनी क्यों कहा जाता। खैर जो भी है मेरा मनोबल बढ़ा। अकेले जाने का जो डर मन में बैठा था वह खत्म हुआ। उसके बाद से अभी तक मैंने कई सफर किए। कई कार्यक्रमों में भाग लिया। अभी तक मैंने संस्था और समाज में काम करते हुए ही 'स्व' का विकास किया है।

मैं ये तो नहीं कहूँगी कि मैं क्षमतापूर्ण हो गई हूं। अभी भी बहुत सारा काम सीखना बाकी है। सिलसिलेवार बात रख पाना मेरे लिए अभी भी मुश्किल लगता है। लोगों के समक्ष अपने ज्ञान को बाँटना भी एक कला है जो कि मुझसे होता ही नहीं है। सबसे बड़ा कमजोर पक्ष है कि मैं अध्ययन नहीं कर पाती हूँ। कई बार पढ़ने की इच्छा होते हुए पढ़ नहीं पाती। क्योंकि उस समय उससे भी महत्वपूर्ण काम सामने आ जाते हैं। उस दूसरे काम को करने के चक्कर में अपना विकास कहीं पीछे छूट जाता है। यह दूसरा काम मेरे स्व पर हावी हो जाता है। मेरे लिए 'स्व विकास' में अध्ययन करना बहुत जरूरी है। परिस्थिति के साथ चुनौतियाँ तो आयेंगी ही। जब कभी कोई चुनौती मेरे सामने आ जाती है तो मैं उदास हो जाती हूं। और उदासी दूर करने के लिए गीत-संगीत में या लोगों से मिलने-जुलने में अपने को व्यस्त कर देती हूं। उन्हीं चुनौतियों का सामना करते हुए पढ़ना और चीजों को समझना मेरे लिए जरूरी है। तभी शायद मेरे अंदर की कमजोरी दूर हो। मुझे समाज को आगे ले जाने के लिये जिन क्षमताओं की जरूरत है उसका विकास हो सके। ताकि समाज परिवर्तन की दिशा में मैं अपनी सार्थक भूमिका निभा सकूँ।

महिला के मन में जब कोई योजना बनती है तो मौके-वेमौके वह आकार ग्रहण करने लगती है। और वह पूरे जी-जान से उसे पूरा करने में जुट जाती है। इसके पीछे उसका चिंतन, परिपक्वता, आत्मविश्वास या जुझारूपन कह सकते हैं। चूंकि उसका संघर्ष उलझन भरा होता है, पर चीजें उसके सामने इतनी सुस्पष्ट होती है कि उसका विश्वास उसे मजबूती से आगे बढ़ने की प्रेरणा देता रहता है। इसी प्रेरणा और आत्मविश्वास के बल पर जब भी कुछ नया करने को सोचती हूँ उसे पूरा करने में समय और श्रम दोनों लगा देती हूँ। साथियों के सहयोग के बल पर नामुमकिन कार्य को भी मुमकिन बनते देर नहीं लगती।

❒❒

एक सफरनामा : स्व से समाज तक

- शशि बारला

"सीखने, सोचने और करने की एक विकसित पद्धति है। यह हमारे भूत और भविष्य के बीच एक लिंक का काम करती है। जो हमारे कार्य करने की प्रतिक्रिया (मतलब) और हमारे सोच को उद्देश्य देता है। सीख हमें व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से काम करने में मदद करता है। उठना और चलना या आगे बढ़ना हर तरह के शोषण का अंत होता है। पर ये आगे बढ़ना या चलना सिर्फ एक दिन के लिए नहीं होकर प्रत्येक दिन के लिए होना चाहिए, तभी हम अपनी जिंदगी में सफलता हासिल कर सकते हैं। ऐसा मैं सोचती हूँ।"

मेरा जन्म रांची में ही हुआ है। हमलोगों का संयुक्त परिवार था। परिवार में आजी, फुफू, मां-पिताजी, हम बहनें, भाई और बड़े बाबा के तीन बेटे भी हमारे साथ ही रहते थे। संयुक्त परिवार में रहने का मजा ही कुछ और होता है। सभी जमकर उधम मचाते और साथ मिलकर घर का काम भी कर लेते थे। मां-पिताजी के काम में व्यस्त रहने से बड़े लोग बच्चों की देखभाल भी कर देते थे। बड़ों से सीखने को भी बहुत कुछ मिलता है। चूंकि पिताजी बैंक में थे अत: आर्थिक अभाव का सामना ज्यादा नहीं करना पड़ा। कपड़े केवल पर्व-त्योहारों में मिलता था। हां खाने के लिए पिताजी ने कभी कमी नहीं होने दी। मुहल्ले के दूसरे बच्चों के साथ मैं भी स्कूल से घर आकर खेलने भाग जाती थी। पर हां समय से खेलकर फिर घर आकर पढ़ना पड़ता था। फुफू चूंकि टीचर थी अत: पढ़ाने का काम उन्हीं का था। समय के साथ- साथ मैं स्कूल से फिर कॉलेज आ गई, और अपनी पढ़ाई पूरी की। पढ़ाई खत्म होने के साथ ही घर के बड़े लोगों को देखकर कैरियर बनाने को लेकर थोड़ा गंभीर होकर तैयारी शुरू कर दी।

इसी बात को लेकर सन् 2005 के जुलाई माह में मैंने संवाद संस्था में अपना योगदान दिया। यूं तो पहले भी सन 1998 से 2000 तक सोशल डेवलपमेंट सेन्टर,चंदवा में काम किया। उसके पहले मैंने कॉलेज की पढ़ाई पूरी करने के बाद बैंकिंग क्षेत्र में जाने का मन बनाया था। उसके लिए मैंने करीब तीन बार बैंक में इंटरव्यू तक पहुंच कर असफल रही। फिर मुझे लगा कि इसमें समय बर्बाद करना बेकार है। क्योंकि परिवार के अन्य लोगों (भाई-बहनों) की तरह मैं भी कुछ जॉब करना चाहती थी। बैंक का काम मुझे आकर्षित करता था, अत: मैं उसे करने के लिए लालयित थी। पर असफल रही। इसी बीच मुझे सोशल डेवलपमेंट सेन्टर चंदवा से काम का ऑफर मिला, तो मैं तुरंत तैयार हो गई। हालांकि उसके लिए मुझे रांची छोड़कर चंदवा जाना था। पर फिर भी मैं तैयार हो गई। मुझे यह पता नहीं था कि वहां का अधिकांश इलाका नक्सलियों का गढ़ है। यह लातेहार जिला में पड़ता है। वहां करीब तीन साल तक काम किया। यहीं पर मैं संस्था के बारे में थोड़ा-थोड़ा जानकारी पा सकी। प्रोजेक्ट, उसके काम की अवधि, काम का तरीका के बारे में जानकारी मिली। चूंकि वहां पर रहकर मैं एकांउट्स का काम करती थी, अत: गांव के लोगों से मिलना-जुलना नहीं हो पाता था। पर वहां जमीन समतलीकरण और चौका काटने के काम गांव के फील्ड में होता था। उस काम के एवज में वहां के लोगों को राशन दिया जाता था। राशन के रूप में टुकड़ा गेहूं, मक्के का आटा और सोयाबीन का तेल लोगों को मिलता था। उसे ही लेने के लिए गांव के लोग आते थे। इसी दौरान मेरा गांव के लोगों या क्षेत्र के लोगों से परिचय शुरू हुआ। वहां हम स्टाफ के लोगों को रहने के लिए क्वार्टर मिला हुआ था। गांव के लोग जब राशन लेने आते तो हमारे क्वार्टर के बरामदे में ही आकर थोड़ा बैठकर आराम करते थे, हमारे क्वार्टर के अहाते में एक चापाकल था। गांव के लोग वहीं पर आकर हाथ- पांव धोते और पानी पीकर आराम करते थे। थोड़े चाय-पानी के बाद मेरा उनसे रिश्ता परिवार के लोगों की तरह हो गया। बाद में यह परिचय गांव के लोगों के आमंत्रण के रूप में उनके गांव-घरों तक होने लगा। और मेरा परिचय का क्षेत्र विस्तृत होता चला गया। इसके साथ ही मुझे फील्ड के कामों को समझने का मौका भी मिला, जो मेरे लिए एकदम नया था। बाद में यही मौका मुझे चिरोपाट, चियांकी, लातेहार, नेतरहाट, महुआडांड़ और पलामू जिले के अन्य गांवों में भी फील्ड को नजदीक से देखने, समझने और वहां के लोगों से बात-विचार का मौका दिया।

यहां संस्था को लेकर एक बात मेरी समझ में आया कि संगठनात्मक उद्देश्यों को

प्राप्त करने के लिए सभी व्यक्तियों की गतिविधियों को एक सामान्य पैटर्न में समन्वित और एकीकृत किया जाता है। विविध गतिविधियों को एक साथ जोड़ने के उद्देश्य से संगठन की आवश्यकता होती है, ये संस्था में आकर जाना। संस्था में प्रत्येक व्यक्ति को एक भूमिका, जिम्मेदारी और आवश्यक अधिकार सौंपा जाता है। उसे अपनी स्थिति, भूमिका और दूसरों के साथ संबंध को जानना एक महत्वपूर्ण पहल है। क्योंकि वह अपनी भूमिका और कर्त्तव्यों के कुशल निष्पादन के लिए और अधिक जिम्मेदार है और ऐसा करने का उसको अधिकार भी दिया जाता है। जो संस्था को व्यवस्थित एवं प्रभावी तरीके से समन्वित करने के तरीके को दिखलाता है। संस्था के भीतर पदों के अनुसार विभिन्न स्तरों के बीच संबंधों के साथ-साथ संस्थागत कार्यों के बीच क्षैतिज संबंधों को दर्शाता है। करीब तीन सालों तक मैं वहां के विभिन्न गांवों को समझी और वहां के मुद्दों से अवगत हुई। चूंकि गांव के परिवेश में मेरा लालन- पालन एवं शिक्षा नहीं हुई है, फिर भी वह परिवेश मुझे आकर्षित करता था। यहीं से संस्था को सीखने और समझने की मेरी शुरूआत हुई थी। नक्सल इलाका होने के कारण और घर के लोगों के लिए तनाव और दबाव के कारण मुझे वहां काम छोड़ना पड़ा।

चूंकि अनुभव परिवर्तन के द्वारा प्राप्त होता है। अत: हमारे जीवन में सीखने की प्रक्रिया महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस कारण व्यक्ति दिन-प्रतिदिन विकास करता है। और आनेवाले भविष्य में सफलता प्राप्त करता है। मनुष्य जो सीखता है या अनुभव प्राप्त करता है उससे उसके व्यवहार में परिवर्त्तन आता है। व्यवहार परिवर्तन के बिना सीख अधूरी है। इसी सीख की प्रक्रिया के तहत मैंने सोशल डेवलपमेंट सेन्टर, चंदवा के बाद 'तरंग भारती' नामक पाक्षिक पत्रिका से जुड़ गई। यह अखबार का कार्यालय था। अत: मेरे लिए यहां पर काम की दूसरी तरह की प्रकृति थी। समाचारों का संकलन, रोजाना की गतिविधियों का आकलन, रोजागार समाचार, किसी व्यक्ति विशेष की जानकारी इत्यादि चीजें वहां के अखबार के माध्यम से प्रकाशित होती थीं। पर पत्रकारिता मेरे लिए बिल्कुल नई विधा थी। यहां भी मैंने एकाउंटस का ही काम किया। यहां मुझे विभिन्न समाचार पत्रिका में काम करने वाले लोगों और मीडिया से जुड़ने का अवसर मिला। विभिन्न मुद्दों पर लोगों के विचारों को सुनने और पढ़ने का मौका भी मिला। मुद्दों पर सरकार के साथ एडवोकेसी करना मुझे इसी समय समझ में आया। एक-दूसरे के बारे में जानकारी साझा करने एक-दूसरे के विचारों और दृष्टिकोणों को जानने के लिए, विषयों पर चर्चा करने के लिए जैसे- राजनीतिक, मौसम,

शिक्षा प्रणाली आदि पर जोरदार बहस जरूरी समझा जाता है। इससे एक-दूसरे की राय का मूल्यांकन आसान हो जाता है।

यहां पर रहकर मुझे लगा कि हमारी पहचान जुड़ी है निर्णय लेने की प्रक्रिया से। जब हमारे काम को मान्यता मिलती है तो हम उससे जुड़े निर्णय को भी लेते हैं। हम जो करते हैं और जो बोलते हैं उसमें कोई अंतर न हो। एक खास बात यह थी कि यहां पर लोगों (पाठक वर्ग) की प्रतिक्रिया का पता तुरंत लग जाता था। क्योंकि उनके जवाब तुरंत आने लगते थे। एक-दूसरे की प्रतिक्रियाओं, विशेषज्ञता, व्यक्तित्व और ज्ञान का पता लगाने का प्रयास किया जाता है। यह एक-दूसरे को बेहतर ढंग से समझने में मदद करता है। संचार और निर्णय लेने में सदस्यों द्वारा उनकी भावनाओं के बारे में अधिक खुले तरीके से चर्चा यहां शामिल थी। इससे सभी लोगों को अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने और भूमिकाओं को सही ढंग से निभाने में सहूलियत होती है। वे परस्पर विरोधी विवादों और दृष्टिकोणों को जानकर उनके समाधान या निर्णय पर मानदंड विकसित करने की कोशिश करते हैं। साथ ही साथ समय-समय पर कार्यों का परीक्षण करना तथा यह देखना कि निर्धारित योजना के अनुसार अखबार निकल रहा है या नहीं। उसके वितरण पर भी ध्यान देना एक प्रमुख काम है। वितरण की संख्या बढ़ी या नहीं। पाठक वर्ग उसको पसंद कर रहे हैं या नहीं। उसका कलेवर क्या हो, यह अखबार की नीतियों और योजनाओं में शामिल रहता है। लगातार तीन साल तक काम करने के बाद जब इस अखबार को दूसरे लोगों ने चलाने का निर्णय लिया तो मैंने उसे भी छोड़ दिया। पर पत्रकारिता के बारे में कुछ जानकारी, लेखन इत्यादि के साथ रिश्ता जुड़ गया।

उसके बाद 2005 में मैं संवाद से जुड़ गई। 'तंरग भारती' पत्रिका के कार्यालय में शिशिर टुडू मेरे सहयोगी थे। शिशिर दा को मैं बचपन से जानती थी। जब संवाद में एकाउंटस के काम के लिए जगह खाली हो गया तो उन्होंने मुझे फोन करके एक आवेदन जमा करने को कहा। मैं आवेदन लेकर संवाद कार्यालय जो कि वर्द्धमान कंपाउंड में था, गई और मुझे कुछ सवाल-जवाब के बाद रख लिया गया। वहां मेरा परिचय सबसे पहले रोज दी (रोज केरकेट्टा) से हुआ। उन्होंने मेरी शिक्षा, पिछले काम का अनुभव और परिवार के बारे में पूछा। एक अभिभावक के रूप में उनको देखकर प्रसन्नता हुई और एक आश्चर्य भी लगा कि 60 वर्ष के बाद अर्थात् रिटायरमेंट के बाद अधिकांश नौकरीपेशा लोग अपना समय घर में बिताने में लगाते हैं, वहां रोज दी

अपना समय समाज के लिए दे रही हैं। उनके काम करने की जिजीविषा किसी को भी प्रेरित कर सकती है। संवाद रांची में हालांकि बहुत कम लोग थे, अत: सभी से परिचय धीरे-धीरे बढ़ता गया। यह एक परिवार की तरह लगा। जहां सीखने और सिखलाने वाले बहुत थे।

प्रारम्भिक परिचयों और एक-दूसरे के बारे में जानने के बाद अगला कदम संस्था के बारे में कुछ संवेदनशील मुद्दों जैसे-संस्थागत कार्यवाही, नेतृत्वशैली और व्यवहार, विवादास्पद निर्णय आदि के बारे में जानकारी मिलती गई। एक सुनियोजित संगठनात्मक संरचना के परिणामस्वरूप संसाधनों का बेहतर उपयोग सीखने को मिला। मुख्य रूप से संगठनात्मक संरचना में यह देखने को मिला कि किस तरह व्यक्तियों और समूहों को उनके द्वारा किये जानेवाले कार्यों के संबंध में व्यवस्थित किया जाता है। और संगठनात्मक 'डिजाइन'-इन संगठनात्मक तत्वों को सबसे प्रभावी तरीके से समन्वित करने की प्रक्रिया को दिखलाता या बतलाता है। संस्था में एक कुशल तरीके से संगठनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए गतिविधियों की व्यवस्था की जाती है। गतिविधियों की व्यवस्था के लिए कर्मियों का असाइनमेंट शामिल होता है। यह एक ऐसा तरीका है जिसके द्वारा संस्था के विभिन्न भागों को समन्वित तरीके से एक साथ बांधा जाता है। कहा जाता है- कि आधा काम तब हो जाता है जब आपको पता होता है कि आपको करना क्या है, और कैसे करना है? अत: संस्था अपने कर्मचारी के प्रयासों का उचित उपयोग कर लेता है। लचीला संगठन प्रगतिशील और लचीली रणनीतियों का सबसे अच्छा उपयोग करते हैं। व्यक्ति संगठनात्मक लचीलापन को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण होता है।

संवाद में 'क्राय' प्रोजेक्ट से जुड़ने के बाद जुड़ाव संस्था को भी जानने का मौका मिला। जो राइट बेस्ड काम करती थी।

जब संस्था को अपने अधिकार अस्तित्व की लड़ाई के लिए रैली, धरना, इत्यादि करते हुए देखा तो अजीब लगा, कि एक संस्था में यह किस प्रकार का काम होता है। क्योंकि पिछली संस्था में काम करते हुए मुझे इस तरह की रैली, धरना का कोई अनुभव नहीं था। जुड़ाव संस्था के द्वारा अपनी अस्मिता के लिए लड़ी जानेवाली सामूहिक लड़ाई का स्पष्ट, निर्भीक और संकल्पबद्ध स्वर सुनाई देता था। सभाओं, मोर्चों, शिविर, कार्यकर्त्ताओं की बैठक इत्यादि लगातार चलता रहता। यहां (जुड़ाव) हमेशा उस समय जल, जंगल, जमीन को लेकर यात्राएं होती थीं। बहस और गोष्ठियां

चलती थीं। जिसके मूल में था- सबसे पहले अपने अस्तित्व को बचाये रख सकने का संघर्ष। फिर शुरू होती थी प्रगति और विकास की लड़ाई। सभी जानते हैं कि हिंसा और अपराध के खिलाफ बोलने वाले को हमेशा समाज में विरोधी और विद्रोही समझा जाता है। और यही जुड़ाव संस्था के साथ हुआ, उसका निबंधन रद्द करके। ये हम सबों के लिए एक गहरा अनुभव था।

'क्राय' के फंड बंद होने के बाद 'सी.डब्लयू.एस.' के फेलोशिप के दौरान विभिन्न स्कूलों में जाकर बच्चों के साथ मानवाधिकार की बातें करने का मौका मिला सुबह-सुबह बच्चों के स्कूलों में जाना और क्लास लेना भी एक अच्छा अनुभव रहा। बच्चों की विभिन्न प्रतियोगिताओं को आयोजित करना, शिक्षकों से बातचीत एवं स्कूल के क्रियाकलापों से अवगत होने का अपना अलग अनुभव है। फुरसत से बातचीत करने या कुछ तय करने के लिए समय नहीं बचता था। घर लौटने पर बाहर के सभी कामों का बोझ थकान को बढ़ा देता। साथ ही आधी दुनिया मैगजीन जो संवाद से छप रही थी उसमें लिखने की प्रेरणा रोज दी से मिली। बातों को कहने और लिपिबद्ध करने की प्रेरणा शिशिर दा से मिली। जो अधिक से अधिक किताबों को पढ़ने की बातें कहते।

साथियों ऐसे अनेक मौके आएंगे जब आपको और मुझे लगेगा कि हम लोग सीधी दिशा में आगे बढ़ने के बजाय समय के गोलचक्र में घूम रहे हैं। पर इतना जरूर है कि आज संस्था, समाज के आग्रह प्रबल हुए हैं। योग्यता की स्पर्धा तीव्र हुई है। और जीवन के हर पृष्ठ पर संस्था और समाज अपनी अमिट छाप छोड़ रही है। दुनिया को बेहतर बनाने के लिए अभी बहुत मेहनत करनी होगी। स्वयं को शिक्षित करने के साथ उस परिवेश को भी बदलना होगा जिसमें हम सबों को अनिवार्यत: जीना है। स्व से, जहां हमारी रचनात्मकता बढ़ती है, संस्था हमें प्रेरणा देती है, और समाज हमें अवसर प्रदान करता है।

❒❒

हिम्मत से पतवार संभालो फिर क्या दूर किनारा

- श्यामली

"आज सैकड़ों हजारों महिलाएं ऐसी हैं जिन्होंने बेहतर जिंदगी की तलाश में शहरों की ओर रूख किया है। वे अपने सपनों की गठरी बांध कर अपने परिवार के साथ निकल पड़ी हैं। अपने पति के कंधे से कंधा मिलाकर आर्थिक आजादी के लिए लड़ रही हैं। कब गांव की दबी- सिमटी महिला से वे अपने घर के महत्वपूर्ण फैसले लेने वाले व्यक्तित्व में बदल गई, उन्हें इसका अहसास तक नहीं है। एक बार जब वो कदम उठा लेती है तो परिवार आगे बढ़ता हैं। मैंने भी कठिन परिस्थितियों में आगे बढ़ने का निर्णय लिया। मेरे सामने भी परिवार के लिए आर्थिक तंगी का समय था। फिर भी मैंने हिम्मत नहीं हारी। और उठकर धीरे-धीरे आगे बढ़ना शुरू किया।"

मैं श्यामली, 52 बीघा, मधुपुर, देवघर की रहने वाली हूं। मैं जुड़ाव में 7 जुलाई 1999 से जुड़ी हूं। मेरा जन्म मधुपुर में हुआ था। मैं अपनी मां दुलाली दास, और पिता श्री हरे कृष्णा दास की कनिष्ठ सुपुत्री हूं। हमारे परिवार में मां, बाबा दो भाई और तीन बहन साथ में रहते थे। जबकि हम लोग चार बहन और दो भाई थे। बड़ी दीदी का बाल विवाह हुआ था इसलिए हम लोग उन्हें नहीं पहचानते थे। बाबा रेलवे, लोको में काम करते थे और साथ में संगीत सिखाते थे। उस समय मानदेय बहुत कम था मात्र 600\- रुपया संगीत मास्टर रहने के कारण ऊपरी आमदनी हो जाती थी। मैंने भी अपने बाबा से शास्त्रीय संगीत, भाव संगीत, रवींद्र संगीत, नज़रुल गीत इत्यादि का प्रशिक्षण लिया। हमारा बचपन बहुत अच्छे से बीता। पढ़ाई लिखाई व गाना बजाना

के साथ हंसी खुशी से दिन बीता।

26 जनवरी 1987 को मेरा विवाह हुआ। मेरे ससुराल में छ: ननद और तीन भाई थे। सभी ननदों की शादी हो चुकी थी।

मेरी सास अपनी छोटी बेटी का विवाह जिस युवक से की थी, उसको जुबान दी थी कि अपने छोटे बेटे के विवाह में जो दहेज मिलेगा, वह दहेज हम उसे देंगे। और इसी उद्देश्य के साथ मेरी सास ने अपने छोटे बेटे का विवाह मेरे साथ करवा दिया। इस अंदरूनी बात की खबर न मेरे पति को थी ना ही मुझे।

वास्तव में मेरी सास को घर पर एक काम करने वाली की आवश्यकता थी। मेरे पति का भी यह सोच था कि मैं और मेरे भैया दोनों तो व्यवसाय संभालने के लिए चितरंजन में रहते हैं, घर पर मां और बाबूजी की देखभाल करने के लिए कोई चाहिए। चितरंजन में रामकृष्ण मिष्ठान भंडार नामक रेस्टोरेंट मेरे ससुर जी का था, जिसे दो बेटे मिलकर चलाते थे।

शादी में मेरे मां बाबा ने जो दहेज दिया था, वह जेवर, बर्तन लेकर छोटी ननद रेनू छीना छीनी करने लगी और घर में क्लेश बढ़ गया। मेरी सास और छोटी नंदोशी को 10000 की आवश्यकता थी इसलिए मेरे पति ने मुझसे विवाह किया और मुझे घर पर छोड़कर वह चितरंजन चले गए।

मेरे पति को जब यह बात समझ में आई कि 10000 छोटे नंदोशी को दिया जाएगा तब वह मेरे बाबा से आकर मिले और उन्होंने प्रस्ताव रखा कि मैं आपकी बेटी से विवाह कर रहा हूं, लेकिन यह पैसे मेरी मां को देने की जगह मुझे दीजिएगा। अत: मेरे पिता ने ऐसा ही किया। तदोपरांत जब यह बात छोटी ननद को पता चला तो घर पर झगड़ा होने लगा। मेरे पति का कहना था कि अगर यह पैसा मेरी सास ने अपनी बेटी को दिया है तो यह किसी और को नहीं दिया जाना चाहिए। धीरे-धीरे समय बीतता गया। दिन सामान्य ढंग से गुजरने लगा। मैं घर संभालती थी और दो भाई अपना व्यवसाय संभालते थे।

अचानक एक दिन मेरे ससुर जी का निधन हो गया। उसके पश्चात मेरे मझले भैसुर मेरे पति को व्यवसाय से निष्कासित कर दिए। और 1992 में मेरे पति व्यवसाय छोड़कर घर वापस आ गए। जिस वक्त कारोबार को लेकर मेरे पति और भैसुर में अनबन चल रहा था तो मैं अपने शादी के जेवर बेचकर कुछ जमीन खरीद ली थी।

1994 में किसी भी तरह से मैंने अपना निजी घर 52 बीघा मधुपुर में बनाया

और फिर अपने घर में रहने लगी। घर तो किसी तरह से बन गया था पर खाने के लाले पड़ गए थे।

शादी के बाद मेरे मायके वालों ने भी मेरा साथ छोड़ दिया। 6 महीना तक अपने मायके में बहुत सारे ताने सुनकर किसी तरह अपना घर बनाया। उस वक्त पैसों के अभाव से कुंडू बंगला में जमीन का जो हिस्सा प्राप्त हुआ था उसे बेचना पड़ा।

आर्थिक स्थिति उस वक्त बहुत ही खराब थी। मेरे दो बच्चे हैं- एक बेटा और एक बेटी। एक दिन मेरे पति अपनी बच्ची को लेकर 52 बीघा के रास्ते में टहल रहे थे उस समय उनकी नजर जुड़ाव नामक संस्थान पर पड़ी। वे तुरंत घर में आकर मुझे बोले की एक ऑफिस खुला है हमारे मोहल्ले में, मैं वहां काम की तलाश में जाऊंगा। मैंने भी उन्हें प्रोत्साहित किया कि हां आपको जाना चाहिए। अगर कुछ काम मिल जाए तो बहुत भला होगा। इस बारे में हमने छातो दा नामक एक व्यक्ति से बात की। उन्होंने आश्वासन दिया कि जुड़ाव के सचिव से मेरा परिचय है मैं पूछ कर आपको सूचित करता हूं।

दो दिन के बाद छातो दा ने बताया की इस वक्त जुड़ाव में पुरुष के लिए कोई काम नहीं है। महिला के लिए एक जगह खाली है। तब मैंने बोला अगर महिला के लिए खाली है तो मैं काम करूंगी।

उस समय केंद्र में पढ़ाने का काम चलता था और मैं जुड़ाव से जुड़कर केंद्र में पढ़ाने का काम करने लगी। जुड़ाव से जुड़ने के पहले मैं कभी घर से बाहर नहीं निकली थी। किसी से बात करने में मुझे बहुत संकोच होता था। कहीं जाने में भय लगता था। मैं 7 जुलाई 1999 को जुड़ाव से जुड़ी और सन् 2000 में पारा शिक्षक का बहाली निकला। सपाहा स्कूल के हेड मास्टर जमरूद्दीन सर ने मुझे कहा कि आप हमारे स्कूल में आ जाइए पारा शिक्षक के रूप में। लेकिन मैं यह समझकर स्कूल नहीं गई की मुसीबत के समय जब घर में खाने के लिए राशन नहीं था तब जुड़ाव ने मुझे काम पर रखा। तो हम जुड़ाव छोड़कर कभी नहीं जाएंगे और आज तक मैं यही हूं। पहले केंद्र में बच्चों के साथ रहना, पढ़ाने के बाद महिलाओं के साथ संपर्क करना तथा एसएचजी ग्रुप बनाने का काम किया करते थे। उस समय बाल मेला का कार्यक्रम भी होता था। उसमें बच्चियों को गाना सिखाना, नृत्य सिखाना तथा चित्रकला सिखाने का काम किया। कुछ दिन बाद मुझे कार्यालय में पुस्तकालय संभालने की जिम्मेवारी मिली। कई वर्ष तक काम करने के बाद फिर कार्यालय छोड़कर फील्ड के कामों को

करने की जिम्मेदारी मिली। गांव में ग्राम सभा सशक्त करने के लिए अभी मैं कार्यरत हूं। वर्तमान में मैं संवाद से जुड़कर गांव के बीच काम कर रही हूं। और आगे भी निष्ठा से काम करती रहूंगी।

आज महिलाओं की चुनौतियां भी अलग अलग हैं। लेकिन एक बात तय है कि सभी महिलाएं मानती हैं कि आर्थिक मजबूती आज महिलाओं के लिए जरूरी है और घर परिवार चलाने के लिये महिला की जरूरत है। घर परिवार की कीमत पर कोई महिला आगे बढ़ना नहीं चाहती। आगे बढ़ने की कीमत कई बार घर-परिवार से अलगाव के रूप में चुकाना पड़ता है। महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए सबसे पहले समाज में उनके अधिकारों और मूल्यों को मारने वाले घटिया सोच को मारना जरूरी है, जैसे - दहेज प्रथा, अशिक्षा, महिलाओं के प्रति होनेवाले घरेलू हिंसा आदि।

❑❑

मेरा आत्मविश्वास कहता है परिवर्तन एक दिन अवश्य आयेगा

- कुसुम देवी

"भारत की लगभग आधी जनसंख्या का प्रतिनिधित्व महिलाएं करती हैं। महिलाओं की क्षमता को नजरअंदाज करके समाज की कल्पना करना व्यर्थ है। वर्तमान समय में महिलाओं की स्थिति पहले की तुलना में बेहतर अवश्य हुई है। महिलाएं अपनी आकांक्षा एवं सपने को पूरा करने में लगी दिखाई देती हैं। परंतु वास्तविक परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो अभी भी समाज में लैंगिक विषमता बरकरार है। महिलाओं को अभी भी सामाजिक परंपरा एवं रूढ़ियों को तोड़ने में काफी लंबा सफर तय करना पड़ रहा है। समाज में व्याप्त भेदभाव से बचना महिलाओं के लिए नामुमकिन सा दिखता है। पुरुष और महिला के बीच की इस खाई को भरने के लिए काफी वक्त और लग सकता है। कई महिलाएं अपने साथ हो रहे इस बर्त्ताव को अपना किस्मत मान लेती है कि जो कुछ भी हो रहा है हमें इसके साथ ही जीवन-यापन करना है पर सबके साथ ऐसा नहीं है। समाज में कई उदाहरण ऐसे भी हैं जहां महिलाओं ने अपने दम पर समाज की विचारधारा को बदलने में कामयाबी हासिल की है। ये बदलाव तभी संभव है जब आप समाज की मानसिकता को बदलने में कारगर हस्तक्षेप करते हैं एवं सकारात्मक रूख अपनाते हैं। कार्य के दौरान कई चुनौतियां मेरे समक्ष आयीं और मैंने धैर्यपूर्वक उनका मुकाबला भी किया। मुझे लगता है कि धीरे से ही सही, परिवर्तन दिखलाई देगा। यह एक दिन में नहीं पर एक दिन अवश्य होगा।"

"स्व विकास के सफर" के बहाने आज मुझे (कुसुम देवी) अपने जीवन के खट्टे-मीठे अनुभवों को आपके साथ साझा करने का अवसर मिला है। मेरा जन्म मेरे पिताजी के मामा के गांव में हुआ। क्योंकि मेरे पिताजी अपने मामा के घर में रहते थे। सात साल तक मेरी परवरिश वहीं हुई। मेरे पिता का नाम सुधीर चंद्र तथा माता का नाम कुंती देवी है। बाद में पिताजी को रेलवे में नौकरी लग गई। तब उन्होंने मां एवं हम सबों को लेकर धनबाद में रहने लगे। हमारी पढ़ाई-लिखाई धनबाद में हुई। मेरी पढ़ाई दसवीं तक ही हो पायी।

उसके बाद जब मैं 18 साल की हुई तो मेरी शादी (सुग्गापहाड़ी जो कि मधुपुर, देवघर में है) कर दी गई। कुछ दिन सबकुछ ठीक ठाक चला। पर परिवार में तनाव बढ़ने के कारण मेरे पति के भाईयों में बंटवारा हो गया। बंटवारे के बाद घर की आर्थिक स्थिति काफी डांवांडोल हो गई। खाने पीने से लेकर घर की अन्य जरूरतों को पूरा करने में काफी कठिनाईयों का सामना करना पड़ रहा था। इसी बीच मैं एक बच्चे की मां भी बन गई। पति घर पर खेती का ही काम करते थे। नकद पैसा कहां से आता। कुछ दिन तक मेरे पिताजी ने मदद की, पर अपनी जिम्मेवारी तो स्वयं ही उठानी थी न। मदद के भरोसे तो सारी जिन्दगी नहीं कट सकती थी। तब मैंने गांव के बच्चों को ट्यूशन पढ़ाना शुरू किया। इससे नगद पैसे हाथ में आने लगे। दिक्कतें थोड़ी कम हुई।

इसी बीच 1998 में जुड़ाव द्वारा एक सेन्टर चलाने का निर्णय हमारे गांव सुग्गापहाड़ी में हुआ जिसमें 0-5 वर्ष के बच्चों एवं महिलाओं को पढ़ाना था। ग्राम सभा बैठक में मेरी आर्थिक स्थिति एवं शिक्षा को देखते हुए सेन्टर चलाने के लिए मेरा चयन किया गया। दूसरे दिन जुड़ाव के विश्वनाथ भैया गांव आये और सेन्टर चलाने के समय एवं नियम को बताये। 8 अगस्त 1998 से सेन्टर चलने लगा। महिलाओं एवं बच्चों के साथ काम करना बहुत अच्छा लगने लगा। अपनी आर्थिक स्थिति भी सुधरी एवं स्व विकास भी होने लगा। घर से बाहर निकलने, किसी से बात करने में जो झिझक होती थी वह धीरे-धीरे खत्म होने लगा। गांव से ब्लॉक तक आने जाने में सक्षम हुई। ब्लॉक के पदाधिकारियों से बात करने एवं गांव की समस्या उन तक रखने लगी। इससे अपनी पहचान बनी एवं लोगों का विश्वास भी जीतने में सफल हुई। महिलाएं आगें बढ़े, अपना विकास करें, आज भी नाते रिश्तेदारों एवं जाति बिरादरी को यह हजम नहीं होता है। मैंने भी जब घर से बाहर अपना कदम रखा तो काफी चुनौतियों का सामना करना पड़ा। लोगों के ताने सुनने पड़े। लोग कहते थे कहां जाती है? क्या करती है? कुछ

पता नहीं। इसके जात का कोई ठिकाना नहीं। इसकी बेटी की शादी भूमिहार समाज में कैसे होगी? इत्यादि। पर मैंने धैर्यपूर्वक इनका सामना किया। तानों को सुनने से मन विचलित होता था, पर इससे घबरायी नहीं। इसे नजरअंदाज करते हुए अपने कार्य में लगी रही। धीरे-धीरे लोगों ने बोलना बंद कर दिया या यों कहें कि मैंने अपने कार्य एवं व्यवहार से उनकी बोलती बंद की। लोगों से संपर्क का दायरा बढ़ा, जानकारी बढ़ी। कार्य के दौरान लोगों का सहयोग भी मिलने लगा। बिचौलियां, दलाल जब काम में बाधा डालते हैं तो अपनी पहचान एवं लोगों के सहयोग से उससे निपट लेती हूं।

2001 से मैं गांव में संगठन बनाने एवं ग्राम सभा सशक्तीकरण का कार्य कर रही हूं। ग्राम सभा बैठकों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी बढ़े इसके लिए महिलाओं को प्रेरित करती हूं। किसानों को जैविक खेती करने के लिए प्रोत्साहित करती हूं। सभी बच्चों को समुचित शिक्षा मिलें इसके लिए भी प्रयास करती हूं। अपने प्रयास से जब कोई कार्य सफल होता है तो अपने अंदर आत्मविश्वास आता है कि मैं भी कुछ कर सकती हूं। समाज में व्याप्त लैंगिक विषमता एवं गैर बराबरी से मन व्यथित होता है। इसके लिए जरूरी है कि महिलाएं जागरूक हो एवं समाज की मानसिकता बदलें। जब समाज की मानसिकता बदलेगी तभी हम न्याय पर आधारित समतामूलक समाज की कल्पना कर सकते हैं।

जुड़ाव से संवाद तक की यात्रा काफी आनंददायक एवं रोमांचक रहा है। नयी जगह जाना, नये लोगों से मिलना काफी सुकून देता है। वर्तमान में मैं ग्यारह गांव एवं दो पंचायत में अपना काम काफी लगन एवं ईमानदारी से करती हूं। ग्रामीणों का विश्वास एवं सहयोग तथा संस्था से जुड़े बड़ों का मार्गदर्शन इसी तरह मिलता रहे तो मेरे स्व विकास की यात्रा कभी रूकेगी नहीं, अनवरत् जारी रहेगी। बदलाव की जो ब्यार चली है उससे नकारात्मक चीजें पीछे छूटेगी एवं सकारात्मक रूख आपके, मेरे, सभी के काम को आसान बनायेगी। मेरा मानना है कि परिवर्तन एक दिन में नहीं, पर एक दिन अवश्य आयेगा।

❒❒

करत - करत अभ्यास नित, हम हुई सुजान

- शांति सोरेन

“किसी भी बच्चे के विकास के लिए जरूरी है कि उन्हें जीवन जीने की बुनियादी जरूरतें भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य सही एवं समुचित मिले। पर यह कल्पना से परे है कि अभिवावक के पास साधन रहते हुए भी बच्चा इससे वंचित रहे। अभावों से जूझते हुए अपने अस्तित्व को बनाये रखना काफी मुश्किल भरा काम है। पर यदि मन में कुछ कर पाने की जिजीविषा हो तो मुश्किलों से भरा काम भी आसान लगने लगता है। राहें बननी लगती है और आप अपने मंजिल की खोज में आगे बढ़ते जाते हैं। मेरी जीवन की कहानी भी कुछ इसी तरह की है यों तो अपने जीवन की कहानी लिखना आसान काम नहीं है। उन तमाम छोटी बड़ी घटनायें एवं संस्मरणों को सूत्र में पिरोना मेरे लिए असंभव सा था, फिर भी कोशिश कर लिख रही हूं। मेरी जीवन यात्रा अच्छा लगा या बुरा यह तो आप पाठकगण तय करेंगे।”

मैं शांति सोरेन हूं। मेरा जन्म जामताड़ा जिले के एक गांव में हुआ। पिता का नाम प्रधान सोरेन एवं माता का नाम मोकोदी हांसदा है। हमलोग चार भाई बहन हैं। मेरा एक भाई बड़ा है तथा एक भाई एवं एक बहन हमसे छोटा है। मैं अपने गांव में रहकर ही सरकारी स्कूल में पढ़ाई करती थी। पढ़ाई के साथ-साथ घर का सारा काम करना पड़ता था जिससे पढ़ाई बाधित होती थी। कभी-कभी पिताजी से मिलने जाती तो वहां भी सौतेली मां खाना बनाकर नहीं देती थी। अपने बनाकर खाना पड़ता था। पहनने को कपड़े भी ठीक ढंग से नहीं मिलते थे। पिताजी और मां दोनों कहते थे अभी

पैसा नहीं है। चाचा के पास विद्यासागर जाने पर चाचा कपड़े खरीद देते थे। चाचा ब्लॉक में वी.एल.डब्ल्यू थे। चाचा जहां रहते थे वहां बगान था। चाचा-चाची उस बगान में बहुत मेहनत करते थे। उनके मेहनत के बल पर बगान में तरह-तरह के फूल पौधे एवं सब्जियां होती थी। आम, जामुन, कटहल, आंवला, अमरूद के पेड़ भी थे। मैं तरह-तरह के अचार बनाती। अपने भी खाती और चाचा-चाची को भी खिलाती। इसी तरह कभी मां तो कभी पिता एवं कभी चाचा-चाची के पास जाकर मेरे दिन कटते रहे। जब मेरे सौतेली मां को बेटा हुआ तो पिताजी मुझे कहने लगे तुम यहीं आकर रहो। अपने छोटे भाई की देख-रेख करना। पिताजी की बात मानकर मैं वहां रहने लगी। परंतु खाना पीना ढंग से नहीं मिलने के कारण वापस गांव आ गई।

पिताजी चितरंजन में घर बनाये। परंतु इसकी जानकारी हम सबों को नहीं दी। यहां तक कि गृह प्रवेश में भी नहीं बुलाया। परंतु जब सौतेली मां छत से गिर गयी तब सेवा के लिए बुलाया। काफी इलाज के बाद भी उन्हें बचाया नहीं जा सका। सौतेली मां की मृत्यु के पश्चात मैं पिताजी के पास रहने लगी। वहां के मिशन स्कूल के होस्टल में रहकर पढ़ाई करने लगी। पर स्कूल की फीस, होस्टल की फीस पिताजी जमा नहीं करने लगे। मां से मांगने पर मां ने कहा यहां आकर पढ़ो। तुम्हारा पिताजी दूसरा शादी कर लिया है वह अब पैसा नहीं देगा। एक बार फिर से मेरी पढ़ाई छूट गई। घर आई तो घर का सारा काम करना पड़ता था। धान रोपना, चावल कूटना जैसे कार्य भी मेरे जिम्मे ही था। नहीं करने पर मां डांटती थी। पढ़ाई के साथ-साथ खेलना-कूदना सब छूट गया। जिस उम्र में बच्चे के विकास के लिए पढ़ाई के साथ-साथ खेलकूद, मनोरंजन जैसी चीजें जरूरी होती है उस उम्र में मैं घर के कामों के बोझ तले दबी रहती। बड़े भाई की शादी के बाद मुझे थोड़ी राहत मिली। विद्यासागर आने पर चाची ने हमें अपने पास रोक लिया। उन्होंने कहा कि तुम यहीं रहो, स्कूल में पढ़ाई भी करो और मेरे कामों में हाथ भी बटाओ। मैं चाची के पास रहने लगी। सुबह उठकर झाड़ू पोछा कर ट्यूशन जाती। उसके बाद आकर चाची को मदद करने के बाद स्कूल जाती। कभी-कभी मां से मिलने भी जाती। इसी तरह मेरे दिन कटने लगे।

आगे कब क्या होगा कोई नहीं जानता है। मुझे भी नहीं पता था कि मेरा भविष्य संस्था में काम करना है। विद्यासागर में जब लोक जागृति केन्द्र का कार्यालय खुला। मुझे वहां काम करने का प्रस्ताव मिला। चाची नहीं चाहती थी कि मैं वहां काम करूं। उनके रजामंदी के बगैर ही मैं वहां काम करने लगी। साफ-सफाई, नाश्ता बनाना,

खाना बनाना इत्यादि काम करती और वहां खाना भी खाने लगी। कुछ दिनों तक कार्यालय ठीक ठाक चला। परंतु किसी कारणवश कार्यालय बंद हो गया। जिस समय कार्यालय बंद हुआ मैं मां से मिलने अपने घर गई थी। वापस आने पर चाचा ने जानकारी दिया कि वे लोग ऑफिस बंद कर दिये हैं। अब नहीं आयेंगे। चूंकि मुझे काम का पैसा नहीं मिला था। तो मैं एक दिन मधुपुर लोक जागृति केन्द्र का कार्यालय आई। वहां अरबिन्द भैया से मिलकर काम मांगा। उन्होंने कहा कि अभी तो यहां काम नहीं है। मेरा मन काफी उदास हो गया भारी मन से मैंने वापस घर जाने का निर्णय लिया और वहां के साथी बीरबल से कहा कि मुझे स्टेशन छोड़ दो। बीरबल ने कहा अरे घर वापस क्यों जाओगी। घनश्याम दा बोलकर गये हैं कि शान्ति आने पर भेंट करने बोलना। मैं घनश्याम दा से मिलने प्रेरणा भारती कार्यालय गई। वहां कोई बैठक चल रही थी। घनश्याम दा से भेंट हुई तो उन्होंने एक सप्ताह बाद बुलाया। एक सप्ताह बाद मैं मां को बताकर फिर वापस मधुपुर आई। रात लोक जागृति केन्द्र में बिताया। फिर सुबह बीरबल हमको 'जुड़ाव' का कार्यालय पहुंचा दिया। दिन तो ठीक से याद नहीं पर महीना दिसंबर और साल 1994 था। वहां उस समय प्रभाकर दा और शेखर दा थे। उन लोगों के साथ मैं भी वहीं रहने लगी। सुबह उठकर साफ-सफाई करती। चूंकि मुझे गैस जलाना नहीं आता था तो चाय नाश्ता शेखर दा ही बनाते। फिर शेखर दा ने मुझे गैस जलाना, चाय बनाना इत्यादि कामों को सिखाया। ये लोग रोटी ज्यादा खाते थे और मुझे भात पसंद था। हार कर मुझे बोलना पड़ा कि मैं आज खाना खाऊंगी (खाना मतलब भात)। पर वहां कुंआ से पानी भरने पर मुझे दिक्कत होती थी। कमर में दर्द हो जाता था। तब शेखर दा ही झाड़ू पोंछा करते थे। सबका खाना मैं बनाती थी। दोपहर में सब साथ बैठकर खाना खाते थे। घनश्याम दा, शेखर दा, प्रभाकर दा, ललिता जी, हरि जी के साथ अन्य लोग भी रहते। मेरा काम ज्यादा ही होने लगा।

शेखर दा की शादी के बाद श्रावणी दी नाश्ता बनाती तो मुझे थोड़ी राहत मिली। फिर वहां बैठक, शिविर भी होने लगा। काम ज्यादा ही बढ़ गया। फिर मेरे काम में सहयोग देने के लिए हरि जी फागु को ले आये। उस समय जुड़ाव में खाने का पैसा नहीं लगता था। इसलिए खाने के समय थोड़ा ज्यादा ही भीड़ हो जाती थी। कभी-कभी तो मुझे और फागु को भूखे रहना पड़ता। 1995 में जब अभियान द्वारा पदयात्रा का आयोजन किया गया तो जुड़ाव की तरफ से मैं भी शामिल हुई। पदयात्रा के दौरान मैंने नारा लगाना सीखा। रोज हमलोग 20 से 25 किलोमीटर पैदल चलते। बहुत ही

मजा आता था। पदयात्रा चतरा, पलामू, गुमला, खूंटी होते हुए रांची पहुंची एवं रांची में सेमिनार हुआ। वापस मधुपुर आकर पूर्ववत कार्य करती रही। परंतु मेरी तबियत बहुत खराब रहने लगी। कार्यालय के तरफ से इलाज भी कराया गया एवं पौष्टिक भोजन की व्यवस्था भी की गई। जब तक दवा खाती ठीक रहती। उसी समय अभियान का दफ्तर भी मधुपुर में खुला। पंकज दा, विनोद, सरोजित सब वहां रहने लगे। वे लोग भी सब मेरी सेवा करते। मैं काफी बीमार रहने लगी तो काम के लिए दूसरी कामवाली को रखा गया। कभी-कभी सोचती अगर मैं घर में रहती तो मैं मर ही जाती। संस्था के लोगों के प्रयास के कारण ही मैं ठीक हो पायी और दुनिया को देख पायी। मेरे स्वस्थ होने के बाद लोग मुझे कहते शांति अकेले कैसे रहोगी। शादी कर लो। मैं कहती नहीं मुझे शादी नहीं करनी। घनश्याम दा भी कहते जो जुड़ाव में आकर रहेगा उसी से शांति की शादी करेंगे। जुड़ाव में उन दिनों सभी कार्यकर्त्ता मिलकर पर्व-त्योहार काफी धूमधाम से मनाते थे। काफी आनंद आता था। पर अब ऐसा नहीं होता है। संस्था की तरफ से कार्यकर्त्ताओं के क्षमता संवर्द्धन हेतु भी कई कार्यक्रम चलाया जाता है। मुझे भी इसका लाभ मिला। उन दिनों श्यामलाल मास्टर प्रेरणा भारती के कार्यालय में सबों को पढ़ाते थे। मैं, ललिता भाभी, कमला भाभी, प्रियशीला सब वहां पढ़ने जाते। पढ़ने जाने के लिए ही मैंने साईकिल सीखा। साईकिल से जाकर पढ़ाई करना मेरे मन को काफी रोमांचित करता था। मेरे अंदर आत्मविश्वास आने लगा कि मैं भी कुछ कर सकती हूं। जुड़ाव में जब शिविर चलता था तब भागीरथ वहां काम करने आता था। कार्य के दौरान ही उनसे परिचय हुआ। फिर सभी ने मिलकर उनसे मेरी शादी की बात की। वह तो मान गया पर उसके घर वाले नहीं मान रहे थे। बंकू ने काफी कोशिश कर उन्हें भी मना लिया। फिर भागीरथ के साथ मेरी शादी हो गई। हमलोगों का एक बच्चा भी है। बच्चा जब छोटा था तो किसी तरह काम कर लेते थे। संभालना तो मुश्किल होता था। थोड़ा बड़ा होने पर होस्टल में रख दिये। फिर ऑफिस के तरफ से जो भी कार्यक्रम होता उसमें पूरे मन से शामिल होने लगी। कार्यक्रम में शामिल होने से नयी-नयी चीजों की जानकारी मिलती। जुड़ाव द्वारा दुमका में संचालित देशज विद्यालय में भी मुझे कार्य करने का अवसर मिला। वहां भी कार्य करना अच्छा लग रहा था। वहां करीब 100 बच्चे शिक्षा ग्रहण करते थे। बच्चों के साथ रहकर उनके क्रियाकलापों में शामिल होना मन को अलग अनुभूति प्रदान करता था, मानों अपना बचपन फिर से लौट आया है। पर किसी कारणवश वह स्कूल बंद हो गया। मैं फिर वापस मधुपुर आ गई। अब मैं

फील्ड कार्यकर्त्ता हूं। महिलाओं का समूह बनाकर उन्हें बचत के लिए प्रोत्साहित करती हूं। उनके बैंक खाता खोलने में मदद भी करती हूं। पहले समूह बनाने में बहुत प्रयत्न करना पड़ता था। रजिस्टर भी अपने लिखना पड़ता था पर अब महिलाएं जागरूक हो गई है। अपना काम स्वयं कर लेती हैं। हमारे प्रयास से पिछलीबाद गांव में गठित समूह को मिनी ट्रैक्टर मिला जिससे हर समूह की महिलाएं अपना खेत जोतती है। समूह को पानी पटाने वाली मशीन, दवा छिड़काव की मशीन, धान कूटने की मशीन भी मिली है। समूह की महिलाएं काफी उत्साहित हैं। उनके उत्साह को देखकर अपना मनोबल भी बढ़ता है और कार्य दुगुने जोश से करती हूं। अन्य समूह की महिलाएं भी तरह-तरह की रोजगार कर रही हैं।

जब मैं पीछे मुड़कर अपने को देखती हूं तो पाती हूं कि संस्था से जुड़कर मेरा काफी विकास हुआ है। महिलाओं के समूह बनाने से लेकर ग्राम सभा के बारे में लोगों को जागरूक करती हूं। उन्हें बैठक में आने के लिए प्रेरित करती हूं। गांव-गांव जाकर आदिवासी संस्कृति, जैविक खेती, सरकारी योजना इत्यादि के बारे लोगों को बताती हूं। संस्था से जुड़कर कार्य करने से परिचय एवं संपर्क का दायरा बढ़ा है। सेविका, सहायिका, सहिया के सहयोग से महिलाओं को टीकाकरण, गर्भवती महिलाओं की जांच इत्यादि के लिए उन्हें जागरूक भी करती हूं। सरकारी योजनाओं का लाभ लोगों को मिले इसके लिए लोगों को सहयोग करने के लिए तत्पर रहती हूं। परंतु मन कभी-कभी काफी व्यथित हो जाता है जब देखती हूं कि कुछ लोग थोड़े से स्वार्थ के कारण समाज को नुकसान पहुंचाते हैं। आज लोग अपने पारंपरिक संस्कृति को भूलते जा रहे हैं। संस्था में कार्य करते हुए मुझे करीब 30 वर्ष हो गये हैं। अब मुझमें भी काफी बदलाव आ गये हैं। आर्थिक स्वावलंबी होने के कारण मैंने अपने बच्चे की परवरिश में कोई कमी नहीं रखी। मुझे हमेशा लगता है कि मैंने जो कष्ट बचपन में उठाया है वह कष्ट कोई भी बच्चा न उठाये। अब मैंने जमीन खरीदकर अपना घर भी बनवा लिया है। मेरे आत्मविश्वास में भी बढ़ोत्तरी हुई है जो मेरे 'स्व' के विकास में काफी मददगार साबित हुई है। मेरी इच्छा है कि मैं आगे भी संवाद से जुड़कर समाज के लिए कार्य करती रहूं। जब समाज आगे बढ़ेगा तब ही हम भी आगे बढ़ेंगे।

❒❒

मिट्टी कहे कुम्हार से, तुम गुरु हम लोई

- श्रावणी

"कोई भी बच्चा जब जन्म लेता है तो वह मिट्टी के लोई की तरह होता है। जिस तरह एक कुम्हार अपनी हाथों से गढ़कर उसे एक सही आकार देता है उसी प्रकार एक बच्चे को भी सही दिशा सही परवरिश देकर गढ़ने का काम परिवार, समुदाय, समाज सभी मिलकर करते हैं। बचपन के शुरूआती दिनों में सिखाने या बतलाने की प्रक्रिया माता-पिता, दादा-दादी एवं घर के बुर्जुगों की होती है। जब बच्चा कुछ बड़ा होता है या विद्यालय जाने लगता है तब इन सबों के साथ मार्गदर्शक की भूमिका में शिक्षक या गुरू भी शामिल होते हैं। जवानी आते-आते बच्चों में भी समझदारी विकसित होने लगती है, वे तार्किक होने लगते हैं, उनमें परिपक्वता आ जाती है फिर भी उस समय एक सही मार्ग दर्शक की जरूरत होती है जो उसे सही मार्गदर्शन दे सके ताकि उनका भविष्य सुरक्षित एवं खुशहाल हो। मैं काफी खुशकिस्मत हूं कि मुझे ऐसे मार्गदर्शक मिले जिन्होंने मेरी विकास यात्रा को सही दिशा दी।"

माता अमिता राय एवं पिता सुबोध कुमार रॉय की सबसे बड़ी संतान मैं। नानी एवं दादी दोनों के घरों में ढेरों दुलार मिला। बचपन मेरा ननिहाल (सिल्ली, रांची) में बीता। इंटर तक की पढ़ाई सिल्ली में हुई। ग्रेजुएशन की पढ़ाई रांची विश्वविद्यालय से पूरी की।

मैं जब बी.कॉम. ऑनर्स की परीक्षा पास की थी तो मन में इच्छा थी कि बैंक में नौकरी करें, उसके बाद लगा नहीं सी.ए. बन जाऊं। इसके लिए मैंने आई.सी.डब्ल्यू.ए. में दाखिला भी ले लिया। परन्तु रात में क्लास चलने के कारण वहां जा नहीं पायी और सी.ए. बनने का सपना अधूरा रह गया। उसके बाद मैं इग्नू से रूरल डेवलपमेंट के कोर्स

में दाखिला लिया। रूरल डेवलपमेंट के कोर्स में एक विषय क्षेत्र में जाकर अध्ययन करने का था। मैं उधेड़बुन में थी कि कहां जाऊं कैसे करूं। उसी समय विनय ओहदार (जो मेरे भाई के दोस्त का भैया हैं) हमारे घर आते जाते थे और एक्स.आई.एस.एस. से आर.डी. करने के पश्चात बी.भी.एच.ए. में नौकरी कर रहे थे। उन्होंने सुझाव दिया (सुझाव क्या उसे प्रस्ताव कह सकते हैं) कि मधुपुर देवघर में महिलाओं की एक संस्था है 'प्रेरणा भारती'। उसकी सचिव कल्याणी दी को को-आर्डिनेशन कार्य के लिए एक लड़की की जरूरत है। तुम उनसे बात कर लो काम के साथ-साथ तुम्हारा अध्ययन का कार्य भी हो जायेगा। फिर उन्होंने ही मुझे कल्याणी दी से मिलावाया। मुलाकात के दौरान ही उन्होंने 'प्रेरणा भारती' के बारे उसके कार्य एवं करने की प्रक्रिया के बारे में बताया और मुझे मधुपुर बुलाया। मैं मधुपुर साक्षात्कार के लिए पहुंची। वहां एक छोटा सा साक्षात्कार (लिखित एवं मौखिक) हुआ। साक्षात्कार के समय प्रेरणा भारती के कार्यालय में घनश्याम दा एवं विश्वनाथ दा भी बैठे थे। उनलोगों ने भी कुछ व्यक्तिगत जानकारी मुझसे ली। दोपहर का भोजन हम सबों ने एक साथ बैठकर किया। 'प्रेरणा भारती' के कार्यालय में पंकज दा ने बड़े प्रेम से मछली भात खिलाया और कहा कि आपकी यात्रा बन गई। मैं सोचने लगी यह कैसा कार्यालय है जहां एक इंटरव्यू देने वाले के साथ इतना आत्मीय व्यवहार इतना सम्मान है। इसके पश्चात मैं वापस रांची लौट आई। लौटने के चार-पांच दिनों के बाद ही मुझे कार्य में योगदान देने का ऑफर आया। मैं खुशी-खुशी पिताजी के साथ मधुपुर आ गई।

मधुपुर से पिताजी जब लौटने लगे तो वे कल्याणी दी, घनश्याम दा एवं विश्वनाथ दा से बोले मैं आपलोगों के गार्जियनशिप में बेटी को छोड़कर जा रहा हूं इसे उचित मार्गदर्शन दीजिएगा। और सचमुच मुझे उचित मार्गदर्शक एवं अभिभावक मिले जिन्होंने मेरे जीवन को सकारात्मक दिशा में मोड़ने में हरसंभव योगदान किया। कल्याणी दी, रेखा दी, घनश्याम दा से संस्था की गतिविधि देश दुनिया की बातों को जाना तो विश्वनाथ दा से एकाउंट का काम सीखा। ललिता भाभी एवं कमला भाभी सहित उनके परिवारवालों ने परिवार की कमी महसूस नहीं होने दी। उन दिनों उदारीकरण, निजीकरण एवं ग्लोबलाइजेशन की चर्चा बहुत जोरों पर थी। मुझे भी इसी विषय पर एक कार्यशाला में भाग लेने हैदराबाद जाना था पर मैं इन सबके बारे में कुछ नहीं जानती थी। मैंने जिज्ञासावश उनलोगों से (कल्याणी दी, घनश्याम दा, विश्वनाथ दा) से पूछा ये क्या चीज है तब उनलोगों ने विस्तारपूर्वक मुझे इनके बारे में

बताया। संस्था से जुड़ने के बाद ही देश दुनिया को जानने एवं समझने का अवसर मिला और साथ ही शुरू हुआ सीखने की प्रक्रिया का आगाज।

'जुड़ाव' में उन दिनों कार्यकर्ता निर्माण प्रशिक्षण शिविर चल रहा था। उसमें भाग लेना, नये-नये लोगों से मिलना मुझे बहुत अच्छा लगता। मुद्दों को समझाने का इतना सरल और व्यावहारिक विधि इतना रूचिकर था कि मैं प्राय: ही दिन में प्रेरणा भारती में कार्य करती और कल्याणी दी को बोलकर शाम को जुड़ाव आ जाती। ऐसा लगता प्रेरणा भारती मेरा मायका तो जुड़ाव मेरा ससुराल। सच में यह बात सच साबित हो गई मेरे निजी जीवन ने भी करवट लिया मेरी शादी शेखर से हो गई। उसके बाद मैं स्वैच्छिक रूप से जुड़ाव से जुड़ गई। जुड़ाव से जुड़ने के पश्चात तो सीखने की प्रक्रिया काफी तेज हो गई। शिविरों में भाग लेना, नये-नये चीजों को सीखना, यह तो मानो दैनंदिनी कार्य का हिस्सा बन गया।

कहां तो मुझे संस्था क्या है यह पता नहीं था, वहीं अब मैं संस्था के कामों में रमने लगी। मुद्दों की पहचान, उनका विश्लेषण कैसे करें यह समझ विकसित होने लगी। दत्ता सांवले, रोज केरकेट्टा जब प्रशिक्षण देते तो नजारा ही कुछ और होता। वे शिक्षक की तरह पढ़ाते नहीं थे बल्कि अपने अनुभवों को गपशप के माध्यम से ऐसा रखते जिससे प्रतिभागी बहुत कुछ सीखते। मुद्दों की समझ विश्लेषण की क्षमता विकसित होने से अपने अंदर आत्मविश्वास भी आता है कि मैं भी कुछ कर सकती हूं। शाम का सत्र सांस्कृतिक सत्र का रहता इसमें हम सभी प्रतिभागी गीत, नृत्य एवं नाटक के माध्यम से मुद्दों को समझते। नाट्य प्रस्तुति के पश्चात उदय दा उसकी बारीकियों से सबको अवगत कराते। शिविरों में सामूहिक अध्ययन, श्रमदान इत्यादि से भी प्रतिभागी बहुत कुछ सीखते। उन दिनों की सीख आज की जरूरत बन गई है।

1995 में अभियान नामक एक मंच का गठन हुआ। अभियान के बैनर तले एक पदयात्रा "जल जंगल जमीन पर सामुदायिक अधिकार" को लेकर आयोजित की गई थी। इस पदयात्रा में मैंने भी भाग लिया। पदयात्रा के दौरान बहुत कुछ सीखने का अवसर मिला। जल जंगल जमीन की अहमियत लोगों के लिए कितना जरूरी है इसे जाना। समाज से प्रत्यक्ष जुड़ने का मौका मिला एवं आम जनमानस के जीवन को जानने समझने का एक अवसर भी। सबों के साथ रहने, यात्रा करने में बड़ा मजा आता। गांव वाले जो भी खाना खिलाते वही बहुत अच्छा लगता। पदयात्रा के दौरान नारा लगाना, बीच-बीच में लोगों के बीच अपनी बातों को रखना ये सब चीजें मन को

आहलादित करते रहती। पदयात्रा के पहले ही मैंने फोटो एवं विडियो का एक छोटा सा प्रशिक्षण शेखर से प्राप्त किया था। उस प्रशिक्षण का फायदा पदयात्रा के दौरान मिला। हमारी यह पदयात्रा पिपरवार से शुरू होकर रांची में समापन हुआ। पिपरवार में कोलियरी के कारण लोगों की जमीन चली गयी लोग विस्थापित हो गये उन्हें अपनी संस्कृति, अपनी धरोहर सभी से वंचित होना पड़ा था। थोड़े समय में ही उन विस्थापित परिवारों से मिल कर उनके दु:ख दर्द को जाना। उद्घाटन के समय सुंदरलाल बहुगुणा जी आये थे। उनके संबोधन ने तो मानो हमारी आंखें खोल दी। आज का तथाकथित विकास लोगों को किस तरह गुमराह करता है। कैसे आमलोगों की मुसीबतें बढ़ाता है यह जाना। तभी से मन में एक सवाल उत्पन्न होता है कि ''विकास की अवधारणा'' कैसी हो जो आम जनमानस से उनकी खुशियां छीने नहीं, बल्कि उन्हें शांति एवं सुकून से रहने दें। पदयात्रा के दौरान नारा लगाना, साथियों में जोश भरने का काम अरूण आनंद करते रहते थे, सच में नारा लगाना यदि मैंने सीखा तो उन्हीं से। इस पदयात्रा से क्षेत्र में काम करने, लोगों से जुड़ने उनकी समस्याओं को जानने की सीख मिली। पदयात्रा के समापन के अवसर पर एक सेमिनार का आयोजन रांची में किया गया। इस सेमिनार ने देश के विभिन्न क्षेत्रों के संघर्षशील साथियों से मिलने का मौका दिया। उनके अनुभवों को सुनने का अवसर मिला।

पदयात्रा के पश्चात 'जुड़ाव' एवं 'अभियान' के बैनर तले जहां भी प्रशिक्षण एवं कार्यशला आयोजित की जाती मैं उसमें भाग लेने लगी और उसकी रिपोर्टिंग करने लगी। धीरे-धीरे रिपोर्ट लिखने की आदत होने लगी। शुरू-शुरू में जो कमियां रहती उसे घनश्याम दा, विश्वनाथ दा, शेखर के मार्गदर्शन में सुधार करती। जुड़ाव द्वारा आयोजित ''प्रशिक्षकों का प्रशिक्षण शिविर में प्रतिभागी बनने का अवसर मिला। यह प्रशिक्षण शिविर मुझे बहुत कुछ सीखने का अवसर दिया। नाटक करने, क्षेत्र में अध्ययन कर उसकी रिपोर्टिंग करने की विधि को जाना।

वर्ष 1997 में जब रांची में अभियान के दफ्तर खोलने का निर्णय लिया गया तब मैं और शेखर रांची आ गये। रांची में जुड़ाव एवं अभियान दोनों का दफ्तर खुला। कुछ साथी भी हमारे साथ जुड़े। फातिमी जी, कोर्दूला कुजुर, सोमेन, कांति टोप्पो, रोजालिया तिर्की, सबों के साथ मिलकर काम करने में बड़ा मजा आता। बाद में नीलकंठ एवं मनोरमा एक्का भी इस टीम से जुड़े। रांची के अभियान कार्यालय में मालंच दी, फैसल दा, दयामनी जी, वासवी जी, मेघनाथ दा, घनश्याम दा जब बैठकी

करते। उस बैठकी में अनौपचारिक रूप से देश दुनिया में चलने वाली घटनाओं की चर्चा होती उनका विश्लेषण होता उनसे बहुत कुछ सीखने को मिलता। सच में मेरी राजनीतिक प्रशिक्षण की शुरूआत तो यहीं से मानो हो चुकी थी। फिर कार्य करते-करते उसमें परिपक्वता आने लगी। झारखंड की स्वायत्तता क्यों जरूरी है? अपनी विशिष्ट पहचान झारखंडी क्यों चाह रहे हैं? यह सब मैंने इसी दरम्यान जाना समझा। झारखंड अलग राज्य की लड़ाई जब जोरों पर थी उस समय साथियों के आग्रह पर झारखंड से निकलने वाले अखबारों में से जो आंदोलन से जुड़ी खबर छपती उसका संकलन कर 'झारखंड खबरनामा' नामक एक पुस्तिका तैयार करती। उसका जेरोक्स कर राज्य एवं राज्य के बाहर के सहमना संगठनों एवं संघर्षशील व्यक्तियों को भेजने लगी। इससे दो तरह का लाभ हुआ। झारखंड में चलने वाले आंदोलन को लोग जानने लगे एवं उनसे जुड़ने लगे और हमारे यहां के आंदोलन को समर्थन मिलने लगा। अपनी पहचान बनी वह लाभ अलग से।

इस तरह से काम चलता रहा और अपनी क्षमता का विकास होता रहा। संस्थागत जो भी कार्यक्रम होता उसमें व्यवस्था संबंधी कार्यों से लेकर हिसाब किताब सबका कार्य करने लगी। हम दोनों (मैं और मनोरमा) जब धर्मशाला इत्यादि बुक करने जाते तो धर्मशाला संचालक हमें रूम नहीं दिखाते उनका प्रश्न होता आप लोगों के घर में पुरुष नहीं है क्या? इन प्रश्नों का उत्तर तो हमलोग दे देते पर मन में आक्रोश होता कि अभी भी समाज में महिलाओं को दोयम माना जाता है। समाज में लिंग आधारित श्रम विभाजन को उसी दरम्यान जाना समझा।

2005 से 'आधी दुनिया' के संपादन का कार्य रोज दी ने संभाला। पहले इसका संपादन कांता आंटी करती थीं, तब पत्रिका आठ पेज की थी एवं इसमें मेरी जिम्मेवारी "गतिविधि" कॉलम लिखने की थी। कभी कभार मेरे द्वारा खींचे फोटो को भी जगह मिलती थी। एक बार "महिलाओं के कार्य" पर आधारित फोटो श्रृंखला को आधी दुनिया के बीच पेज में जगह मिली इससे आत्मविश्वास में बढ़ोत्तरी हुई। रोज दी के संपादक बनने के बाद वह लेख लिखने के लिए हौसला आफजाई करती और उनके दिशा निर्देश में लेख लिखने लगी। 2005 में संवाद से शिशिर दा जुड़े। इन दोनों के सान्निध्य एवं मार्गदर्शन में लिखने पढ़ने को नयी दिशा मिली। रोज दी एवं शिशिर दा के आपसी वार्तालाप से भी बहुत कुछ सीखने को मिलता। शिशिर दा के फिल्मी डॉयलाग एवं जिन्दादिली हमारे अंदर के जज्बे को हौसला देते। मेरे लेखन को व्यापक फलक

देने का कार्य फैसल दा ने भी किया। वे जब अखबारों के विशेषांक निकालते महिला मुद्दे से संबंधित लेख लिखवा ही लेते। उनके कारण ही मेरे द्वारा लिखे लेख एवं फोटो रांची से निकलनेवाले अखबारों में छपे।

अभियान एवं जुड़ाव के बैनर तले कई राष्ट्रीय स्तर की बैठक एवं कार्यशाला भी आयोजित होती थी उसमें देश के नामी गिरामी संघर्षशील साथियों (जैसे अनिल चौधरी, मेधा पाटकर, एस आर हीरेमठ, स्मितु कोठारी, खुशीर्द भाई, अनिल प्रकाश आदि) के अनुभवों को सुनने का अवसर मिलता। उनके जज्बे से अपने अंदर भी हौसला आता। सामाजिक कार्य की दुनिया काफी अच्छी लगने लगती और अपने निर्णय पर गर्व होता कि सचमुच मैंने सही रास्ता चुना है।

जुड़ाव एवं अभियान से जुड़ने का एक लाभ यह भी हुआ कि अन्य संस्था संगठनों के कार्यक्रमों में भाग लेने से अपनी पहचान सामाजिक कार्यकर्ता की बनने लगी। नावो झारखंड, महिला गरिमा अभियान जैसे महिला मंचों से जुड़ने का अवसर मिला एवं अपनी पहचान महिला मुद्दों पर कार्य करने वाली कार्यकर्ता के रूप में स्थापित होने लगी।

2009 में जब जुड़ाव का निबंधन रद्द हुआ वह काल हम सबों के लिए काफी चुनौतीपूर्ण रहा। आर्थिक असुरक्षा एवं भय के माहौल में हम सभी कार्य करते रहे। पर कहते हैं न कि भय एवं दु:ख के बादल काफी देर तक टिकते नहीं। यहां भी ऐसा ही हुआ। जुड़ाव को जो आर्थिक मदद देते थे उन्होंने संवाद को आर्थिक मदद देने का भरोसा दिया और रूके कदम फिर से चल पड़े। संवाद के गठन (2001) के समय से ही मैं स्वैच्छिक रूप से संवाद के कार्यालय एवं एकाउन्टस का कार्य करती थी। 2010 से तकनीकी रूप से संवाद के कार्यकर्ता के रूप में जुड़कर आज तक कार्य कर रही हूं। संवाद का अभिक्रम बच्चों पर भी है। ''शंबूक'' नामक एक बुकलेट निकलती थी जिसमें शिक्षा से संबंधित सामग्री होती थी। उनके प्रकाशन सहयोग में भी हाथ बंटाती। 2005 में शशि बारला के संवाद से जुड़ने के पश्चात हम दोनों विद्यालयों में जाकर बच्चों को बाल अधिकार, मानव अधिकार, महिला अधिकार जैसे मुद्दों पर जागरूक करते। शुरूआत में थोड़ी दिक्कतें आई पर बाद में विद्यालय के प्रिंसिपल एवं शिक्षकों का सहयोग मिलने लगा। जो प्रिसिपल पहले बोलते ''मैडम अधिकार उतना ही बताइए कि बेटा बेटा रहे बाप न बने।'' वही प्रिंसिपल हमें फोन करके आने के लिए बोलते। कभी कभी बच्चों पर बनी फिल्म जब बच्चे देखते तो काफी उत्साहित होते तो हमें भी खुशी

मिलती। इस अभिक्रम से बच्चों से जुड़ने एवं उनके मनोभावों को समझने जानने का अवसर मिला। संस्था के कार्य क्षेत्र का दायरा भी बढ़ा और (संस्थान एवं कार्यकर्ता) दोनों की पहचान बाल अधिकार पर कार्य करने वाले के रूप में हुई। शशि के साथ करीब 18 वर्षों से कार्य कर रही हूं। जहां भी जाती दोनों साथ जाती हूं। रिश्ता ऐसा कि क्या नाम दूं समझ नहीं आता। कभी सहमति तो कभी असहमति। सांस्थानिक से लेकर परिवार तक की बातें, खुशी एवं दु:ख दोनों में साझीदार।

जुड़ाव, अभियान एवं संवाद के प्रशिक्षणों के कारण ही मेरी पहचान एक प्रशिक्षक के रूप में बनी। अन्य संस्था संगठन भी ग्राम सभा, जेन्डर, महिला नेतृत्व जैसे मुद्दों पर प्रशिक्षण देने बुलाने लगे। आज मैं जो कुछ भी हूं वह संस्था एवं समाज दोनों के सहयोग के बल पर ही हूं। संस्था में कार्य करने का पारिवारिक माहौल, सामूहिकता, निर्णय का सम्मान, संगठन का लचीलापन इत्यादि मेरे कदम को आगे बढ़ाते रहे।

सीखने की कोई उम्र नहीं होती। इंसान नित नयी चीजें सीखता है एवं अनुभवों से गुजरता है। आज भी सीख रही हूं ताकि अपनी जिंदगी को पढ़ सकूं। जीवन के गणित को सुलझा सकूं।

मेरे सामाजिक सफर के सफरनामा को सुगम सरल बनाने में सबों का योगदान है। बड़ों का मार्गदर्शन जिन्हें अभिभावक कहना ज्यादा उपर्युक्त होगा। उन्होंने अच्छा कार्य करने पर पीठ तो थपथपाया पर जब कदम लड़खड़ाये या गलती हुई उसे इंगित भी किया और सुधरने का अवसर भी दिया। जब मैं कमजोर पड़ती साथियों के संबल ने मेरे हौसलों को बढ़ाने का काम किया। छोटों का प्यार तो हमेशा से ही अभिभूत करता रहा। समाज ने मुझे बहुत कुछ दिया, मुझसे संस्था, समाज एवं समुदाय को क्या मिला इसका आकलन तो मैं नहीं कर पाऊंगी। हां, पर इतना जरूर है समाज के इस बगिया ने मुझे ढेर सारे बहनों एवं भाइयों से मिलवाया है जो प्रेम से मुझे दीदी बोलते हैं यही मेरे कार्यकाल की पूंजी है, सम्मान है और आगे बढ़ने का हौसला भी।

❐❐

बीती ताहि बिसारिए, आगे की सुधि ले

- **सुनीता मुर्मू** (दुमका)

"आदमी ने महिला को जिस एक चीज से मारा, कुचला या अपने अधीन रखा है, वह है महिला की स्वतंत्रता। पितृसत्तात्मक शक्ति हमेशा महिला की स्वतंत्र सत्ता से डरती रही है। और उसे ही उसने बकायदा अपने आक्रामण का केन्द्र बनाया है। अपनी अंखडता और संपूर्णता में महिला हमेशा अजेय रही है। वह ऐसी शक्ति है जो दूसरों को मजबूत बनाती है। इसमें वह स्वछंद और स्वतंत्र है- इसलिए आदमी ने उसे तोड़ा है। तोड़कर ही किसी को कमजोर और अपने अधीन किया जा सकता है। अत: पितृसत्ता ने लगातार हर तरह की कोशिश की है कि उसे परतंत्र और निष्क्रिय बनाया जा सके। एक बात मैंने शिद्दत से महसूस की है कि जो चीज आपके पास नहीं होगा, अंतर्मन में उसके न होने की कुंठा डर बनकर बैठ जाती है। क्योंकि रहना तो मुझे भी इस समाज में ही है। पीछे मुड़कर देखती हूं और सोच में पड़ जाती हूं कि आखिर अपने जीवन को एक रूप देने के लिए बहुत पहले ही मैंने कोई कदम क्यों नहीं उठाया।"

मैं सुनीता मुर्मू, गांव-अंगरायडीह, पंचायत- कोथोकिचा, दुमका की हूं। मेरा जन्म 1985 में गांव मन्सानडीह, पंचायत- सितूवा में हुआ। मेरे पिताजी फौज में थे। फौज से रिटायर्ड होने के बाद उन्होंने दुमका प्रखंड के अंगरायडीह गांव में पांच कट्ठा जमीन खरीदी और घर बनाया। हमलोग तीन बहनें और दो भाई हैं। मेरे पिताजी की दूसरी नौकरी दुमका ब्लॉक में गार्ड के रूप में हुई। पिताजी की नौकरी थी तो हम भाई-बहन हंसी-खुशी में पल-बढ़ रहे थे। पर कुछ दिनों के बाद मेरी मां की तबीयत खराब

हो गयी। करीबन लगातार तीन साल तक मां बीमार रही तो मामा लोग उसे इलाज के लिए सिऊड़ी ले गए। मेरी मां के लगातार बीमार रहने के कारण हम सभी भाई- बहनों की पढ़ाई सरकारी स्कूल में हुई। हम सभी लोग ठीक से पढ़ाई नहीं कर सके।

मां के ठीक होने के बाद मेरी शादी गांव- मोरटंगा, पंचायत- बन्दरजोरी, दुमका में हुई। मेरी शादी 1996 में हुई, उस समय मैं पांचवीं क्लास में पढ़ रही थी। मेरा पति उस समय इंटर में अपनी पढ़ाई कर रहा था। शादी होने के बाद मैं चार साल अपने मां- बाप के घर पर ही रही। पर जब मैं थोड़ा- बहुत दुनियादारी समझने लगी तो मुझे मेरे पति पसंद नहीं आने लगे। क्योंकि वे नशापान करते थे। शादी के बाद भी माता- पिता के घर पर ही रहने के कारण मेरे मां-पिताजी और सास ससुर के बीच झगड़ा होने लगा। अत: मुझे अपने ससुराल जाना पड़ा। 2000 में मैं अपने ससुराल आयी। मेरे ससुर जी चपरासी की नौकरी करते थे। उसी से हमलोगों का परिवार चलता था। इसी बीच मेरी दो बेटी और एक बेटे का जन्म हुआ। तबतक हम सभी लोग साथ-साथ रहते थे।

कुछ दिनों के बाद मेरी सास ने मुझे अलग खाना बनाने को कहा। मेरे पति तो कुछ कमाने वाले नहीं थे। मेरे लिए तो तीन बच्चों के साथ जीवन का यह बिल्कुल नया अनुभव था। बावजूद इसके कि मैं बच्चों को क्या खिलाऊं। कितनी ही बार हमारे पास अगले दिन का खाना नहीं होता था। एक नई चुनौती मेरे सामने थी। अपने बच्चों को वैसा जीवन, प्यार और शिक्षा देने के लिए जिससे मैं वंचित थी। मैं अंतिम सांस तक लड़ने को कृतसंकल्प थी। वह एक नई 'मैं' थी। अपने आत्मविश्वास को उभारा और कुछ करने की ठानी। जब 2000 में मैं ससुराल आयी थी, उस समय डी.पी.ई.पी. सर्वशिक्षा अभियान से मेरा चयन किया गया था। दीदी के रूप में मुझे 500/-रु. मिलते थे। 500/-रु. में परिवार नहीं चलने के कारण मुझे दूसरे लोगों के घरों में दैनिक मजदूरी करनी पड़ती थी। मैं गांव के छोटे बच्चों को ट्यूशन भी पढ़ाती थी।

जब भी मैं दुमका जाती तो मैं कचहरी अवश्य जाती थी। नर्स का फार्म भी भरती रहती थी। एक दिन की बात है कुछ लोग कचहरी में धरना दे रहे थे। मैं भी उत्सुकतावश अपने बेटे को गोद में लिए धरना में हो रहे लोगों की बातें और समस्याओं को ध्यान से सुन रही थी और अपने मन में चिंतन कर रही थी कि किस से इन सब के बारे में पूछूं किसी से पता चला कि ये संस्था के लोग हैं। और गांव वालों की समस्या को लेकर धरना कर रहे हैं। उस समय तो मैं घर लौट आयी, पर मेरे मन में संस्था में काम

को लेकर उत्सुकता हुई। कौन लोग हैं, क्या काम करते है आदि। जब ये गांववालों की समस्या को लेकर आगे आए हैं तो इनके पास मेरी समस्या का भी समाधान होगा। इसी उधेड़बुन में कुछ दिन निकल गए। फिर मैं भी अपने काम में व्यस्त हो गई। अचानक एक दिन एनी दी से मेरी भेंट हो गई। मैंने उसे कचहरी में धरना के समय देखा था। वह भेंट परिचय में बदल गया। मैंने उसे अपनी समस्या बतलाई, तो उन्होंने मुझे 'जुड़ाव' संस्था के बारे में बताया। उस समय 'जुड़ाव' का कार्यक्षेत्र दुमका भी था। ऐनी दीदी बोली- कल 3 बजे आप आ जाइए। वह मुझे लेकर भीम दा से मिलवायी। उसने हमलोगों को दिन तय करके मधुपुर जाने की सलाह दी।

मधुपुर में घनश्याम दा से मौखिक सवाल-जवाब के बाद मैं भी 'जुड़ाव' संस्था से जुड़ गई। मुझे 10 गांवों में काम करना था। मांझी, परगनैत और गांव के लोगों से मिलजुलकर काम करना था। अत: उन लोगों के साथ मुझे अपना परिचय बढ़ाकर गांवों में काम करना था। जो मेरे लिए आसान नहीं था। फिर धीरे-धीरे समय के साथ लोगों से परिचय भी बढ़ा और मेरी पहचान भी बढ़ी। शुरू में अपने परिचय के साथ जब मैं जुड़ाव संस्था के बारे में बतलाना होता था तो मेरी परेशानी बढ़ जाती थी। क्योंकि जबतक आप संस्था के काम काज के बारे में नहीं जानेंगे आप सामनेवाले को संतोषजनक जवाब नहीं दे सकते। धीरे-धीरे और बार-बार मीटिंगों में मधुपुर आते हुए मुझे अपनी जानकारी को बढ़ाने का मौका मिला। जुड़ाव और संवाद जैसी संस्थाओं के माध्यम से दूसरे जिलों में जाने और लोगों से पहचान बढ़ी है। मेरी हिचकिचाहट अभी भी कम नहीं हुई है। वह भी काम करते हुए खत्म हो जाएगा ऐसा मेरा विश्वास है।

जुड़ाव संस्था का निबंधन रद्द होने के बाद और संवाद में आने के बाद से अब तक मैं यहीं रहकर काम कर रही हूं। इस संस्था से जुड़कर मैं अपनी दोनों बेटियों की बी.ए. तक की पढ़ाई पूरी करवा चुकी हूं। पर मेरा बेटा कोरोना काल में गलत संगत में रहकर अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़ दिया।

मैं मन लगाकर परिवार चलाने के लिए संघर्ष करती रही हूं, लेकिन मेरे पति अभी भी पहले जैसे ही हैं। अभी भी उसी तरह नशापान करते हैं। दुर्भाग्य से शराब की लत से सबसे ज्यादा गरीब और कमजोर तबके प्रभावित होते हैं। परिणामस्वरूप नशेड़ियों के घरों में आर्थिक हानि, कलह और पति-पत्नी, मां-बाप तथा बच्चों के बीच झगड़े आम बात है। गरीबी तले पिसते परिवार पर शराबी एक बोझ बन जाता है। उसका स्वास्थ्य तो बिगड़ता ही है परिवार को भी इसका भयावह परिणाम भुगतना पड़ता है।

प्राय: परिवार टूटकर बिखर जाता है। शराब की लत से समाज में हिंसा बढ़ती है। इसका खमियाजा सबसे ज्यादा भुगतना पड़ता है, महिला और बच्चों को। महिला को शराबी पति की प्रताड़ना सहनी पड़ती है और मासूम बच्चों के पालन - पोषण का जिम्मा भी अपने दम पर उठाना पड़ता है।

मेरे रास्ते में अनेकों बार आंधी, तूफान आए। अनेक रूकावटें आयीं पर मैं पीछे मुड़कर नहीं देखी। मेरे मन की सोच है कि कल जो हुआ सो हुआ। आनेवाले कल में क्या होगा, इसके लिए थोड़ा तैयार रहना चाहती हूं। सबसे बड़ी बात है कि मैं खुश हूं। आर्थिक रूप से स्वतंत्र हूं। समाज में मेरा अपना महत्वपूर्ण स्थान है। यह सब कैसे हो गया, बता नहीं सकती। सच! किसी चमत्कार से कम नहीं।

❒❒

बदलाव का नजरिया चाहिए 'स्व' के विकास के लिए

- अन्ना सोरेन

"हमारी संस्कृति का युगों पुराना सार है कि अपने को जानो। अपनी स्थिति को जानो। अपने गुण- दोष को समझो और अपने हिस्से का योगदान करो। जहां तक महिलाओं की मौजूदा स्थिति का सवाल है, उसमें परिवर्त्तन हुआ है। पर परिवर्तन की प्रक्रिया कभी साफ-साफ नहीं होती। वह बहुत ही धीमी दिखाई पड़ती है। वह हर परिवार, व्यक्ति, वर्ग और स्थिति में अलग-अलग होती है। जिस अनुपात में समाज सचेत होता जाता है, उसी अनुपात यह घेरा बढ़ता जाता है। पर इस परिवर्त्तन ने एक अलग रूप ग्रहण किया है। इसके परिणाम हमारे रोज की जिंदगी में दिखाई पड़ते हैं। ज्यादा उत्तरदायित्व आ जाने पर महिला अपनी बढ़ी हुई जिम्मेदारियों को भी अपनी दिनचर्या में शामिल कर लेती है। इसके साथ समाज में महिलाओं के लिए कहे जानेवाले कथन कि 'महिला ही महिला की दुश्मन है' के मिथक को टूटते अपने सामने अनुभव किया है। मैने कठिन परिस्थितियों में अपनी मां और मेरी सास दोनों को हरदम अपने साथ खड़ा पाया।"

मैं अन्ना सोरेन, गांव- रानीकोल, पो.-देवपुर, थाना- हिरणपुर, जिला- पाकुड़ में मेरा जन्म हुआ। मैं एक मध्यम वर्गीय परिवार से हूं। मेरे परिवार में तीन ही लोग हैं- मेरी मां, मेरा एक भाई और मैं। जब हम छोटे थे तभी मेरे पिताजी की मृत्यु हो गयी। मुझे अपने पिताजी का चेहरा याद नहीं है। मेरी मां का नाम हेलेना मुर्मू है और पिताजी का नाम स्व. लोरेंस सोरेन था। दो बच्चों का भरण- पोषण मेरी मां ने अकेले

किया। हमलोगों को पालने में मां ने कठिन परिश्रम किया। सुबह से ही धान कूटना और खेतों में काम करना उसका रोज का नियम था। अकेले अभिभावक होने के बावजूद मां ने मुझे मिशन स्कूल में पढ़ाया। गांव से 5 किलोमीटर की दूरी पर तोड़ाई मिशन स्कूल में पढ़ाई की। मुझे मिशन की तरफ से मदद या एस्पोनसर मिलता था और साल में एक बार कपड़ा मिलता था। मैंने हॉस्टल में रहकर शिक्षा ग्रहण की। मुझे मिशन स्कूल तक ले जाने में सिस्टर सिसिलिया का बड़ा हाथ था। उस समय गरीब और असहाय लोगों का मिशन की तरफ से मदद मिलता था। मेरी मां जब चर्च जाती, तो सिस्टर उससे पूछती कि बच्चे कहां पढ़ रहे हैं। मेरा भाई तो वहीं पढ़ता था। पर मैं स्कूल नहीं जाती थी। तब सिस्टर के कहने पर मां ने मेरा नाम भी उसी स्कूल में करवा दिया। इस स्कूल में मैं एक से दसवीं क्लास तक पढ़ी। मैट्रिक के लिए बाहर के स्कूल से रजिस्ट्रेशन कराना होता था। मैट्रिक की परीक्षा रानी ज्योर्तिमय हाई स्कूल, पाकुड़ से दी।

मुझे याद है जब मैं मैट्रिक की परीक्षा दे रही थी तो वहां भ्रष्टाचार चारों ओर दिखाई दिया। विद्यार्थी किताबें खोलकर परीक्षा दे रहे थे। चूंकि मैं मिशन स्कूल से पढ़ी थी। अत: इस तरह की बातें हमें सिखाई नहीं जाती थी। वहां इस तरह की चोरी को देखकर हमारे स्कूल के सभी विद्यार्थियों ने इसके खिलाफ आवाज उठाई जिसका परिणाम यह हुआ कि बाकी के पेपर परीक्षा नियंत्रक की निगरानी में शांतिपूर्ण ढंग से पूरे किए गए। परीक्षा के बाद मैं हॉस्टल से घर आ गई। मेरे भाई ने कहा - रिजल्ट आने के बाद पता चलेगा कि कैसा लिखी हो। मैं डर गई क्योंकि मैं जानती थी, कि मैं गणित और अंग्रेजी में बहुत कमजोर हूं। पर मैं मैट्रिक की परीक्षा किसी तरह पास कर गई। फिर मैं अपनी सहेली के पिताजी जो कि टीचर थे, उनकी सलाह से दुमका के महिला कॉलेज में एडमिशन लेने की सोची। मेरे साथ मेरी सहेली को भी अच्छा लगा क्योंकि वहां लड़का और लड़की सभी साथ में पढ़ते थे। वहां रैगिंग भी होता था। अतः साथ में रहने से डर थोड़ा कम हो जाता। पर संयोगवश मेरा तो एडमिशन हो गया पर मेरी दोस्त का नहीं हो पाया। मेरे लिए कठिन स्थिति हो गई। एक तो मैं अकेले वहां नहीं जाना चाह रही थी और मेरे भाई का कहना था कि दूर में खर्च अधिक होगा। सहेली भी रहती तो इधर-उधर से घटी- बढ़ी की पूर्त्ति की जा सकती है। बाद में मेरी सहेली का एडमिशन पाकुड़ कॉलेज में हो गया। मुझे कहा गया कि अभी दुमका कॉलेज में ही रहो बाद में तुम्हारा कॉलेज भी परिवर्त्तन या ट्रांसफर पाकुड़ कॉलेज में करवा देंगे।

पर मेरी हिम्मत नहीं हो रही थी क्योंकि मैं वहां के रैगिंग के बारे में काफी कुछ सुन रखा था। सहेली साथ में रहने से थोड़ा साहस होता।

मैं 1999 से लेकर 2002 तक पढ़ाई -लिखाई छोड़ दिया। क्योंकि दूर में खर्च अधिक हो रहा था। इस समय मैं घर आ गई और घर का काम करने लगी। हॉस्टेल में रहने के बावजूद मुझे घर के कामों को करने में कोई दिक्कत नहीं हुई। धान रोपनी से लेकर कटनी तक और चूल्हा- चौका से लेकर घर की सफाई तक का काम।

2003 से मैं प्रियशीला के संपर्क में आयी। उसके साथ में जुड़ाव में ट्रेनिंग के लिए जाती थी। उस समय बोकारो, हजारीबाग, मधुपुर, दुमका, पाकुड़, गोड्डा और साहेबगंज के युवा वर्ग का प्रशिक्षण होता था। प्रशिक्षण के दौरान गांधी, जयप्रकाश, लोहिया आदि की पुस्तकों का रोज सुबह- सुबह अध्ययन कराया जाता था और सबसे पूछा जाता था कि इस पंक्ति में क्या कहा गया है। इस तरह जुड़ाव में हर कार्यशाला में मेरा आना-जाना हुआ। साहेबगंज में मैंने साइकिल चलाना सीखा। पहले मुझे लगता था कि साइकिल चलाना सीखने की क्या जरूरत है। कोई तो होगा जो मुझे ले जाएगा। लेकिन सामाजिक कार्यों में आने के बाद इसकी उपयोगिता मुझे मालूम हुई। इसके साथ ही मैंने मूक-बाधिर विद्यालय में छः माह का कोर्स किया।

2005 में जुड़ाव से जुड़कर साहेबगंज में स्वशासन साथी के रूप में काम शुरू किया।

इस क्षेत्र में काम करने के लिए गांव मेरे लिए नया था। फिर भी गांव-गांव जाकर लोगों के बीच काम शुरू किया। वहां के पंचायतों में मेरी पहचान बढ़ती गई। गांव के लोगों ने मेरी बहुत मदद की। जुड़ाव द्वारा आयोजित झारखंड यात्रा के कार्यक्रमों में पंचायत सदस्य, शिक्षक, ग्रामप्रधान, ग्रामीण, बच्चे सभी लोगों के सहयोग मेरे साथ रहा। सामाजिक कार्यों के दौरान साथियों से प्रेरणा पाकर फिर से पढ़ाई जारी रखा और अपना बी.ए. और एम.ए. की डिग्री हासिल किया।

2013 में मेरी शादी तालझरी गांव में हुई। ससुराल में सास, पति और देवर इतने ही लोग थे। मेरे पति मैट्रिक के बाद से ही शिक्षण का काम कर रहे थे। तब हम लोगों ने तय किया कि उन्हें शिक्षक प्रशिक्षण का कोर्स कराया जाए। पर उसके लिए खर्च कहां से आएगा। तब मैंने स्वयं उनकी पढ़ाई का खर्च उठाया। मैं अपनी सास को भी परिवार चलाने एवं खेती के कार्यों में जो खर्च होता था, उसमें मदद करती थी। मेरी सास हमेशा मुसीबत में मेरे साथ रही। और अंत तक मेरे बच्चों की देखभाल इस तरह से की कि मैं

निश्चित होकर दो से तीन दिन तक बाहर रहकर भी काम कर लेती थी। ये सब 'जुड़ाव' की देन है कि संस्था ने हर व्यक्ति को समाज और परिवार के प्रति समर्पित करने के लिए सिखाया है। जो मैं अपने आप में अनुभव कर रही हूं। जुड़ाव में काम के दौरान हमें ट्रेनिंग, कार्यशाला, स्व का विकास, स्वयं सफर करना इत्यादि सिखलाया गया है। 'जुड़ाव' के साथ घटना घटने के बाद 2008 में मैं 'संवाद' में आई। हमने यहां बोलना सीखा। निडर हो गये, हिम्मत आयी और बहुत सारे कामों को सीखा। काम छोड़ने के बाद मैं बैठी नहीं रही। अपनी स्वयं के विकास के लिए इग्नू से डिप्लोमा इन एलीमेंटरी एजुकेशन किये।

इसके बाद 2019–2020 में संताली ओलचिकी शिक्षक के रूप में करन पुरतो विद्यालय में बच्चों को पढ़ाये। 2021 में बच्चों को बरहरवा चरमपुर के स्कूल में पढ़ाये। 2022 मई महीने से मैं फिर संवाद में जाभागुड़ी पंचायत में आदिवासी शिक्षा फेसिलिटेटर के रूप में कार्यरत हूं। मेरी सास मेरी मदद करती थी, लेकिन अब वो इस दुनिया में नहीं है। मैं अपनी सास के बिना एकदम बेसहारा महसूस करती हूं। मेरा बड़ा बेटा मेरे पति के पास और छोटा बेटा मेरे साथ है। परिवार का बोझ मेरे ऊपर आ गया है। घर की चिंता और अपने काम की चिंता दोनों लगा रहता है।

यह जरूरी है कि अपने बारे में आधारभूत बातों को जानने से अपनी ताकत बढ़ती है। अपनी ताकत को पहचानने और जानने के लिए आत्मज्ञान का होना जरूरी हिस्सा है।

❐❐

अपनी जड़ों से जुड़ने का सपना हुआ साकार

- मती मुर्मू

"आज एक नयी शताब्दी के विहान की बेला में महिलाओं में यह चेतना उत्पन्न हुई कि अधिकारों तथा अवसरों के रूप में उन्हें काफी कुछ मिला है। फिर भी सामाजिक और राजनीतिक ढांचे के भीतर अपना स्थान प्राप्त करने की दृष्टि से उन्हें अभी काफी लंबी मंजिल तय करना बाकी है। नीति निर्माता और समाज दोनों यह स्वीकार करते हैं कि प्रगति के समान अवसरों के माध्यम से महिलाओं का सशक्तीकरण बुनियादी तौर पर अवश्य हुआ है। पर अपने आप में यह कोई बुनियादी उपलब्धि नहीं है। यद्यपि अनेक महिलाओं को परिवर्तित वातावरण का पूरा लाभ मिला है, तथापि महिलाओं का एक बड़ा भाग अभी तक उत्पीड़न और भेदभाव की प्रवृत्ति का शिकार है। उत्पीड़न और भेदभाव के कारण न्याय प्राप्ति के लिए उनका संघर्ष जारी रहेगा। आज वे पुराने जमाने की अग्रणी महिलाओं द्वारा दिखाये रास्ते पर आत्मविश्वासपूर्वक आगे बढ़ सकती हैं, इससे पहले मुझ जैसी नयी पीढ़ी के लिए यह संभव नहीं था।"

मैं मती मुर्मू एक बहुत ही साधारण परिवार से हूं। मेरा जन्म पूर्वी सिंहभूम जिला के सोमाई झोपड़ी गांव में हुआ था। मध्यम वर्गीय परिवार में होने के बावजूद मेरी शिक्षा शुरु से ही छोटे से प्राइवेट स्कूल से हुई जो कि हिन्दी मीडियम स्कूल था। पर कोई मार्गदर्शक नहीं होने के कारण जो खुद से समझ आता गया इसी अनुसार आगे बढ़ते गए।

मेरा सपना था कि मैं एक डॉक्टर बनूं, पर घर के हालात ऐसे नहीं थे कि मेरे

लिए चार ट्यूशन का खर्च उठा सके। इसलिए इंटर साइंस से करने के बाद आगे स्ट्रीम चेंज करना पड़ा। इतनी समझ नहीं होने के कारण और लोगों की बातों को सुनकर यह विश्वास कर लिया कि सबसे अच्छा विषय साइंस होता है, इसमें नौकरी के बहुत अवसर होते हैं, उसके बाद कॉमर्स और सबसे कम अवसर आर्ट्स में होता है। और इसी अवधारणा को मानते हुए मैंने आगे की पढ़ाई के लिए कॉमर्स लिया पर बेसिक क्लीयर नहीं होने के कारण मुझे बहुत जूझना पड़ा।

इसी दौरान मेरी एक सहेली आशा ने बताया कि टीसीएस (टाटा कन्सलटेंसी सर्विस) द्वारा एक परीक्षा ली जा रही है, अच्छे नंबर मिलने पर ये कंपेटेटिव द्वारा परीक्षा के लिए तैयारी करवायेंगे और फीस में छूट भी देंगे। यह सोचकर परीक्षा दिये और अच्छे अंक मिलने के कारण मैं चुन ली गई। उसके बाद श्रीमन क्लासेस में क्लास करने लगी।

इसी दौरान टी.सी.एस. की तरफ से कुछ विद्यार्थियों का मास्टर डिग्री के लिए चयन किया जा रहा था। उस टेस्ट में उत्तीर्ण होने के बाद मेट की परीक्षा के लिए तैयारी करने लगी। परीक्षा पास होने के बाद मुझे जेवियर इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट, भुवनेश्वर और जेवियर इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट, जबलपुर के लिए विकल्प दिया गया। पर उसकी कुछ शर्त्तें जैसे हॉस्टल और खाने के खर्च को वहन करने की क्षमता मेरे परिवार में नहीं होने के कारण मुझे जेवियर इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट, जबलपुर को चुनना पड़ा।

काफी सीमित संसाधन होने के कारण वहां पढ़ाई करना थोड़ा मुश्किल था। क्योंकि वहां सब कुछ इंगलिश में पढ़ाया जाता था और नोट्स व्हाट्एप ग्रुप में साझा किया जाता था। उस समय मेरे पास एंड्रॉइड फोन नहीं था, तो मुझे काफी सारी आसान चीजों के लिए जूझना पड़ता था।

'टाटा' के तरफ से मुझे काफी आर्थिक सहयोग मिला। वहां की पढ़ाई को खत्म करने में वहां के शिक्षक और डीन का भी काफी अच्छा मार्गदर्शन मिला। सारे सेमेस्टर अच्छे से निकल गए। आखिरी सेमेस्टर में सबसे ज्यादा डर लगा, क्योंकि उसी समय विभिन्न कंपनियां आई थीं जो अपनी कंपनियों के लिए इंस्टीट्यूट से ही नौकरी के लिए विद्यार्थियों का चयन कर रही थीं। एक 'माइक्रो फायनांस कंपनी' भी आई थी। माइक्रो फायनांस में रूचि नहीं होने के बावजूद उसके ग्रुप चर्चा में भाग ली, पर उसमें नहीं चुनी गई।

दूसरी बार 'प्रथम एजुकेशन फाउंडेशन' के लिए लिखित परीक्षा पास होने के बाद इंटरव्यू भी काफी अच्छा रहा और साथ में इंटर्नशिप का विषय भी काफी लाभकारी रहा। अंतिम सेमेस्टर का परिणाम आने से पहले ही नौकरी में चयनित हो गई थी, इसलिए खुशी तो बहुत थी। पर फाइनल परीक्षा में रिजल्ट क्या होगा, यह सोचकर चिंतित थी। अंतिम रिजल्ट का परिणाम देखकर मन को तसल्ली हुई।

यहां तक का सफर बहुत आसान नहीं था। भेदभाव का अनुभव भी मुझे व्यक्तिगत रूप से कभी झेलना नहीं पड़ा था। पर मेरी एक सहपाठी के साथ एक दूसरी लड़की द्वारा आदिवासी कहकर उसका मजाक उड़ाया गया। कुछ दिन के बाद जब मुझसे बर्दाश्त नहीं हुआ तो मैंने अपनी दोस्त को बहुत सुनाया। उसके बाद से उसने दोबारा क्लास की किसी भी आदिवासी लड़की को जंगली नहीं बोला।

मेरे ज्यादातर दोस्त गैर आदिवासी ही थे, पर उन्होंने कभी ऐसा भेदभाव नहीं किया। मेरे घर से भी पढ़ाई के लिए बाहर जाने के लिए पाबंदी नहीं थी। भैया और मेरे बीच भी कभी कोई भेदभाव नहीं किया गया। बस निम्न मध्यम वर्गीय परिवार होने के कारण आर्थिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा है। किसी भी चीज के लिए पैसे चाहिए होते थे तो कम से कम 2-3 दिन इंतजार करना पड़ता था।

परेशानी उस समय अधिक बढ़ गई, जब पापा नशा की चपेट में आ गए और उन्होंने काम भी बीच में ही छोड़ दिया। जेब खर्च और बस का किराया भी ठीक से नहीं मिल पाता था। तब मेरी नानी ही मेरी एक मात्र सहारा थी, जो मुझे जेब खर्च और किराया दिया करती थी।

किताबें खरीदने के लिए भी दिक्कत थी इसलिए कॉलेज की लाइब्रेरी से किताबें लेकर नोट्स तैयार करती थी। वैसी किताबें जो लाइब्रेरी में नहीं मिलती थी तो ग्रुप के किसी दोस्त से लेकर फोटोकॉपी करा लेती थी। यह सफर मुश्किल जरूर था पर कुछ ऐसे साथी भी मिले जो हर संभव मदद करने को तैयार रहते थे। यह सबक और सीख आगे बहुत काम आयी।

सबसे पहली संस्था "प्रथम एजुकेशन फाउंडेशन" में काम करना शुरु किये, तो फील्ड विजिट के दौरान दसवीं की छात्राओं के साथ बात करने का मौका मिला। उनसे बात करने से पता चला कि ऐसी कई छात्राएं थीं जो काफी संघर्ष के साथ अपनी पढ़ाई कर रही थीं। गरीबी एक ऐसी बाधा जो आपको हर दिन थोड़ा और मजबूत करती है। कुछ बच्चियां लोगों के घरों में बर्त्तन साफ करती थीं तो कुछ कपड़े सिलती थीं। इन

कठिनाईयों के बावजूद वे अपनी पढ़ाई को पूरी शिद्दत के साथ पूरी कर रही थीं।

उनकी स्थिति को जानकर जब मैं वापस आ रही थी तब मैंने खुद के बारे में सोचा और खुद को बहुत खुशनसीब महसूस किया। मेरी स्थिति उनकी तुलना में काफी ज्यादा अच्छी थी।

पहली बार जब मुझे दूसरे जिले में अकेले जाना था तो मन में बहुत ज्यादा डर लग रहा था। यह पहली यात्रा थी जब एक अनजान जगह के लिए जाना और रूकना था। वहां जाने के बाद लोगों का व्यवहार देखकर मन में बैठा हुआ डर धीरे-धीरे समाप्त हो गया और इस भ्रांति का अन्त हुआ कि बाहर के लोग बुरे होते हैं या झूठ बोलकर लोगों को लूटने का काम करते हैं। और यह बात साफ हुई कि अन्य जगहों के लोग भी हमारे जैसे ही अच्छे होते हैं।

उसके बाद राजस्थान के बांसवाड़ा जिला के घाटोल ब्लॉक में मुझे भेजा गया। जिसके लिए भी बोला गया था वहां लोग शाम 6 बजे के बाद घर से नहीं निकलते और वहां के आदिवासी काफी खतरनाक होते हैं। पर जब वहां गई तो ऐसा कुछ भी नहीं था। वहां के लोग बहुत भोले-भाले थे और बाहर से आए लोगों का बहुत आदर करते थे। वहां शिक्षा का स्तर काफी कम था। साथ ही गरीबी इतनी ज्यादा थी कि बच्चे फैक्ट्री में काम करने के लिए जाते थे। पैसा हाथ में आने से उनका स्कूल और पढ़ाई के प्रति रूचि कम होती गयी। अभिभावक भी बच्चों के प्रति इतना ज्यादा ध्यान नहीं दे पाते थे।

इसके बाद मुझे एक साल के लिए झारखंड के सिमडेगा जिले में कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय के छात्राओं के साथ काम करने का मौका मिला। वहां सात में से केवल दो कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय ही गांव के आसपास थी। बाकी के पांचों विद्यालय काफी दूर जंगल को पार करके जाना पड़ता था। और वह क्षेत्र नक्सलवाद के लिए जाना जाता था। इसलिए विद्यालय जाते समय शुरू-शुरू में बहुत डर लगा, परंतु मेरी साथी जो सिमडेगा की ही थी वह कहती थी कि नक्सली लोग वहीं जंगलों में रहते हैं पर वे कभी भी ग्रामीणों को तंग नहीं करते हैं, केवल प्रशासन एवं नेताओं को ही परेशान करते हैं। मैंने लगभग एक साल तक वहां काम किया पर मुझे ऐसी कोई भी परेशानी कभी भी नहीं हुई।

यहां मुझे एक ओर चीज सीखने को मिली कि यदि हमें अपने कार्य क्षेत्र (समुदाय, गांव, विद्यालय आदि) में बिना किसी अवरोध या रूकावट के काम करना है तो सरकार

(चाहे वो गांव की हो, चाहे ब्लॉक, जिला अथवा राज्य) के साथ आपसी सामंजस्य बना कर चलना पड़ेगा। जहां थोड़ा सा भी मनमुटाव या उनसे बेहतर काम दिखाया या किया जाए और इससे उनको कुछ नुकसान या जवाबदेही देनी पड़े या ऐसी आशंका बनती हो तो वे लोग मिलकर आपका विरोध कर सकते हैं। इससे आपका और आपसे भी ज्यादा आपके लाभार्थियों को नुकसान हो सकता है।

इसके बाद मैंने बिहार की एक संस्था 'सहगल फाउंडेशन' में काम किया। बिहार को लेकर, मन में बहुत ज्यादा नकारात्मक विचार थे। सबसे सुनती थी कि बिहार के लोग बुरे होते हैं, यहां सबसे ज्यादा क्राइम होता है, यहां के लोग बदतमीजी से बात करते हैं और यह जगह बिल्कुल भी सुरक्षित नहीं है। इसलिए मन में यह धारणा बनी हुई थी कि भारत के किसी भी राज्य में काम कर लेंगे लेकिन बिहार और उत्तर प्रदेश में नहीं। पर इंटरव्यू में जो भी लोग थे उन्होंने काफी सहजता से बात किया और उनका यह भी कहना था कि पहले एक बार एक सप्ताह के लिए यहां आकर देखिए। यदि आपको लगेगा कि आप यहां नहीं काम कर पाएंगे तो आप वापस चले जाईएगा और संस्था आपके सारे खर्च वहन कर लेगी। उन लोगों के बर्त्ताव का मुझपर असर पड़ा और मै बिहार जाने के लिए् खुद को तैयार कर लिया। वहां महिलाओं के स्वास्थ्य पर एक प्रोजेक्ट शुरू ही हुआ था और बेसलाइन सर्वे चल रहा था। मुझे इसी प्रोजेक्ट को लीड करना था।

बहुत छोटी सी टीम सर्वे कर रही थी और मुझे दूसरे ही दिन लोग किस तरह से सर्वे कर रहे हैं, लोगों से किस तरह के प्रश्न पूछे जा रहे हैं और उत्तर देनेवाला किस तरह से जवाब दे रहे हैं, उसे देखने समझने के लिए भेजा गया था। यह सर्वे बिहार के समस्तीपुर जिले के कल्याणपुर प्रखंड गांव में हो रही थी। वहां मैंने देखा गांव के अधिकांश घर पूस (टाटी) के बने हुए थे और उनमें एक ही कमरे थे और उस छोटे से घर में 5 से 7 सदस्य रह रहे थे। घर के आस-पास काफी गंदगी थी, बकरी भी वहीं पर बांध रख थे और मक्खियां भिनभिना रही थी। सच कहूं तो मुझे बैठने की भी इच्छा नहीं हो रही थी। पर फिर भी मुझे देखना और सुनना था कि वहां के लोग ऐसी स्थिति में कैसे अपना जीवन जी रहे हैं। मैंने बहुत धैर्य से एक उत्तर देनेवाला का पूरा इंटरव्यू सुना कि कैसे उसकी शादी लगभग सोलह वर्ष में पैसे के अभाववश कर दी गई थी और शादी के पांच साल के अन्दर उसके तीन बच्चे हो गये। वह अक्सर बीमार रहती है और घर खर्च पर्याप्त नहीं होने के कारण वह दिन भर में सिर्फ दो ही बार खाना खा

पाती है। सारे प्रश्न समाप्त होने के बाद मुझसे रहा नहीं गया तो मैंने उससे पूछा यहां पर सबके घर पूस (टाटी) के क्यों है? तो महिला ने बताया कि यह गांव बाढ़ पीड़ित क्षेत्र है और यहां लगभग हर साल बाढ़ का पानी घुस जाता है और हमें बहुत नुकसान होता है। हमारा घर पूरा बर्बाद हो जाता है या बह जाता है। इसलिए यहां सब लोग पूस के घर पर ही रहते हैं और जैसे बारिश ज्यादा होती और नदी का स्तर बढ़ने लगता है, हमलोग अपना सामान बांधकर किसी सुरक्षित स्थान पर ऊंचे जगह पर चले जाते हैं। जब पानी कम हो जाता है तब हमलोग वापस आते हैं और हमें फिर से अपना घर बनाना पड़ता है। इसलिए अब आदत हो गई है और पूस ही ऐसा साधन है जो कम पैसे में मिलता है। पक्का मकान बनाना हमारे बस की बात नहीं है। ये सब देखकर और सुनकर मुझे बहुत अजीब सा लगा। मन में कई तरह के प्रश्न आ रहे थे। मन तो एक सप्ताह के बाद वापस आने का था पर जब मैंने इतनी जरूरत देखी तो मैंने मन बना लिया कि इसके लिए अगर काम नहीं किया तो शायद मैं खुद चैन से नहीं रह पाऊंगी। और मैं वहां रूक गई और उनके स्वास्थ्य एवं खानपान को लेकर आंगनबाड़ी और आशा कार्यकर्त्ता, एएनएम और डॉक्टर के साथ काम किये।

महिलाओं और छोटे बच्चों के साथ काम करने के दौरान फिर एक प्रोजेक्ट किशोरियों के स्वास्थ्य पर भी आया। जिसमें किशोरी के साथ बैठकर उनकी सोच, खान-पान और स्वास्थ्य के प्रति उनके नजरिये को अच्छे से समझ पायी। एनीमिया से कैसे बचे रहें, इस पर कई जागरूकता कार्यक्रम चलाया गया। सांप-सीढ़ी खेल के साथ किशोरियों को मासिक धर्म के दौरान स्वच्छता के बारे में बताया गया। खेल खेल में संवेदनशील मुद्दे पर भी आराम से समझ बनी और एक कदम स्वच्छता और बेहतर स्वास्थ्य की ओर बढ़ा। किशोरियों को एक मंच मिला जहां वे एक साथ बैठकर संवाद, अलग-अलग व्यवहारों को जानने और अभ्यास का अवसर, निर्णय लेने की क्षमता, और कई तरह के बीमारियों के लक्षण, कारक एवं उपचारों तथा बचाव के बारे में जाना और सीखा। मुझे इस पूरे प्रोजेक्ट के दौरान कई चीजें सीखने को मिली। मैंने खुद पढ़ा, सीखा और जागरूकता संबंधित कई विषयों को लिखा/बनाया। कई पोस्टर और वॉल पेंटिंग डिजाइन किए। कई रिपार्ट और वीडियो क्लिप्स के लिए कंटेन्ट लिखा और कई बार अनुभव बांटने वाले सत्र से बहुत कुछ सीखने सिखाने का अवसर मिला।

इस बीच कोविड का समय आया और मैं पूरी तरह से समस्तीपुर में फंस कर रह गई थी। जमशेदपुर में कोविड के इतने पॉजिटिव केस आ रहे थे कि घर जाने की

हिम्मत ही नहीं हो रही थी। हर यात्री को क्वारंटाइन किया जा रहा था, और बहुत सारी ट्रेनों को कैंसिल कर दिया गया था। बहुत ज्यादा डर का माहौल बना हुआ था। इस दौरान एक कमरे में इतने दिन तक बंद रहना बहुत ज्यादा कठिन था। लॉकडाउन में काफी ज्यादा खाली समय भी मिला जिसमें ऑनलाइन ट्रेनिंग लिये और दिये। काफी चीजें पढ़ने को भी मिली।

इसके बाद धीरे-धीरे स्थिति सामान्य हुई और काम फिर से चालू हुआ। थोड़ा मुश्किल था लोगों को टीके के लिए तैयार करना, पर टीम और आशा कार्यकर्त्ताओं के लगातार प्रयास से टीकाकरण संभव हो पाया। काम सही से ही चल रहा था पर मन में ये चीज आने लगी थी कि कब तक अलग राज्य में काम करते रहेंगे। ऐसे में अपने राज्य के लोगों के लिए काम करने का मौका आखिर कब मिलेगा। इसके लिए कई संस्थाओं (जो झारखंड में कार्यरत हो) को आवेदन दिये। बहुत सारे इंटरव्यू भी दिए। पर कहीं न कहीं प्रोजेक्ट को बीच में ही छोड़ देने को मन राजी नहीं हो पाया।

अंतत: मैंने 'संवाद' का विज्ञापन देखा। यह संस्था रांची और सरायकेला जिले में भी यह काम कर रही है, यह देखकर मुझे बहुत खुशी हुई और मैंने निश्चय कर लिया कि अगर मौका मिला तो, इसमें जरूर से काम करेंगे। इसके बाद मैंने 1 नवंबर 2022 को 'संवाद' ज्वाइन कर लिया। यहां आने के बाद पहले ही दिन व्हाट्सएप या जिसमें मुझे पहली बार बड़े ग्रुप में अपना परिचय संताली में देने का मौका मिला, यह मेरे लिए बहुत महत्वपूर्ण और खुशी की बात थी।

जब मुझे यहां ग्राम विकास, गांव सभा, टोला सभा यानी गवर्नेंस की सबसे छोटी इकाई के बारे में विस्तारपूर्वक लोगों को काम करते हुए सुना। तो मुझे अंदर से बहुत खुशी हुई। मुझे फाइनली ऐसा लग रहा था कि मैं अपने लोगों के बीच काम कर रही हूं। अपने आस-पास के समुदाय से बहुत कुछ सीखने सिखाने का अवसर मिलने वाला था, इनके साथ बैठकर उनकी समस्याओं को सुनने और उसके लिए क्या संभावित समाधान हो सकते हैं, इसकी पहचान करने का अवसर प्राप्त होने वाला है।

पहली बार जब गांव जाने का मौका मिला, मैं बहुत खुश थी। जब मुझे मेरा परिचय देने का मौका मिला, मैंने संताली में बोलना शुरू किया। थोड़ा अजीब सा महसूस हो रहा था जैसे कि कुछ भी ठीक से नहीं बोल पा रही हूं क्योंकि मैंने कभी भी इससे पहले अपनी बात इतने लोगों के सामने संताली में नहीं रखा था। मुझे हिचकिचाहट हो रही थी। मैंने हमेशा से ही हिन्दी भाषा में ही लोगों के सामने अपनी बात रखी है।

मुझे इसी में सहज महसूस होता था। पर उस दिन मेरे थोड़े से अपनी भाषा में बोलने से महिलाओं की भागीदारी बढ़ गयी। जो महिलाएं इतनी देर से चुपचाप बैठकर सुन रही थी वे भी अब बोलने लग गई थी। पूछने पर अच्छे से जवाब दे रही थी।

इसके बाद से हर महीने गांव जाकर लोगों से मिलने का बात करने का अवसर मिलता जा रहा है और लोगों की समस्याएं उनकी गांव की विकास यात्रा उनके प्रयास के बारे में जानकर अच्छा लगता है। सबसे अच्छी बात यह लगती है लोग आज भी गांव की हर छोटी बड़ी मुद्दों को गांव के अखड़ा में बैठकर सुलझाते हैं एवं ग्राम विकास जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर बात करते है। ऐसा लगता है कि लगातार इस प्रयास से धीरे-धीरे उन सभी लोगों का चाहे वो महिला हो या पुरुष या अल्पसंख्यक या थर्ड जेंडर सभी का विकास सुनिश्चित हो सकेगा।

अंतत: मुझे लगता है कि मैं उस स्थान पर पहुंच चुकी हूं, जहां मैं पली बढ़ी, यहां मेरा गांव, राज्य है और यहां के लोग मेरे अपने हैं। इन सबों के लिए इस संस्था द्वारा सिखाये गये और दिशा निर्देश एवं उद्देश्य से मैं समुदाय को कुछ न कुछ मदद या रास्ता जरूर बताने का प्रयास करूंगी। जिससे लोग अपने हक और अपने विकास की ओर अग्रसर हो सके।

❒❒

रचना और संघर्ष का अनुभव हमें स्वावलंबी बनाता है

- **सुनीता मुर्मू** (मुसाबनी)

"आज तक महिला यह नहीं जानती कि उसका कोई अपना मूल्य है या नहीं। एक तरफ वह खेत, लघु उद्योगों या सिलाई का काम करके रोजी-रोटी कमाने तथा पानी और उर्जा जैसी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के बावजूद कहती है कि वह कुछ नहीं करती। सिर्फ घर का काम करती है। दूसरी तरफ वह अच्छी तरह से जानती है कि वह न हो तो परिवार का परिवार नष्ट हो जाएगा। इसलिए ज्यादा से ज्यादा मेहनत करके परिवार की जरूरतों को पूरा करती है। महिलाएं आज प्रतिबद्ध हैं और साहसपूर्वक बोलने की जिस स्थिति में आ पहुंची हैं। उसके लिए उन्हें संघर्षों के दौर से गुजरना और काफी यातना भी सहना पड़ा है। मेरी कहानी में भी संघर्षों का ऐसा ही दौर रहा है।"

मैं सुनीता मुर्मू, मेरा जन्म पूर्वी सिहंभूम के मूसाबनी प्रखंड के मेड़िया गांव में एक किसान के घर हुआ था। बाबा खेती किसानी के साथ-साथ गांव में माझी हाड़ाम और नायके दोनों पद संभालते थे। मां घर एवं खेती-बाड़ी की देखभाल करती थी। मेरे तीन छोटे भाई हैं। इनकी देखभाल और खेती-बाड़ी के कामों में मैं मां का हाथ बंटाती।

गांव के स्कूल से प्राथमिक शिक्षा लेने के बाद शिवलाल हाई स्कूल से मैट्रिक परीक्षा दी। परीक्षा के बाद मुझे मुंबई जाना पड़ा जहां मेरे छोटे दादाजी काम करते थे। दादी की तबीयत खराब होने के कारण पांच साल तक मुझे वहां रहना पड़ा। इस

दौरान मेरी पढ़ाई छूट गई। पर दादी की देखभाल के साथ सिलाई सीखा। घर लौटने पर मैंने 1998 में घाटशिला कॉलेज घाटशिला में इंटर में नामांकन लिया। घर की आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण घर में ही सिलाई करना शुरू किया। लोगों के कपड़े तैयार कर पैसा जुटाकर आगे की पढ़ाई जारी रखी। मेरे सहपाठी भी मुझसे सिलाई सीखना चाहा, तो मैंने सोचा कॉलेज के बाद घर में ही सिलाई सिखाने का काम किया जाये। जब हम दो से आठ साथी हुए तब हमने सोचा कि कहीं ऐसी जगह की तलाश करें जहां हम देर तक सिलाई कर सकते हैं। गांव में ही सड़क के किनारे लोहिया भवन है, जहां पुरूष केवल कैरम बोर्ड खेला करते थे। उसी भवन का छोटा कमरा पूर्व मुखिया से बात कर हमलोगों ने ले लिया। सिलाई मशीन हमारी साथी चिंता मार्डी अपने घर से ले आई। जहां सभी महिलाएं सीखकर सिलाई करतीं। मैंने भी अपना मशीन ले लिया। दोनों मशीनों में हम बारी-बारी से सिलाई करते।

इसी बीच मेरी शादी गांव में ही हो गई। शादी के बाद मेरी पढ़ाई फिर से छूट गई, परंतु मैं सिलाई नहीं छोड़ पायी। सिलाई का पैसा आने पर परिवार को बहुत सहारा मिला। इससे गांव में मेरी पहचान बढ़ी। अब आस-पास के गांवों से भी महिलाएं मेरे पास सिलाई सीखने के लिए आने लगीं। सिलाई के साथ-साथ हमने महिलाओं का स्वयं सहायता समूह का निर्माण किया। जहां 10 रु. प्रतिमाह सदस्यों को जमा करना पड़ता था। इस समूह का कोई मालिक नहीं था। इसी समूह से साल्गे मार्डी भी जुड़ीं। हम कुछ कपड़ों की कतरन दुकान से लाये और उसे तैयार करके बाजार में बेचना शुरू किया। वही पैसा हमारी पूंजी बना। फिर धीरे-धीरे ये आगे बढ़ता गया। मुझे समूह का अध्यक्ष बनाया गया। जिसके कारण बैंक में खाता खोलने और प्रखंड कार्यालय बार-बार जाने के कारण मेरी पहचान बढ़ी। रिवॉलिंग फंड जुटाने को लेकर बाहर आना-जाना शुरू किया। घर से मुझे कोई सहयोग नहीं मिलता था। जिसके कारण मुझे कई तरह की परेशानियों का सामना करना पड़ा। कई लोग ताना मारते थे। पर अनेक लोगों ने सहयोग भी किया। गांव के बुजुर्गों और महिलाओं ने मुझे बहुत सहयोग दिया।

उसके बाद मैंने स्नातक में फिर से नामांकन किया। बच्चे छोटे थे, फिर भी मैंने पढ़ाई पूरी करने का निर्णय लिया। पर्यावरण चेतना केंद्र, पोटका में सिलाई ट्रेनर बनकर काम किया। पहले संस्था की कार्यकर्त्ता और बाद में अध्यक्ष बनीं। यहां से सामाजिक कार्यों को करने का मन बनाया। महिलाओं को रोजगार से जोड़ना एवं उन्हें

अपने अधिकार के प्रति जागरूक करने का काम मुझे अच्छा लगता था। वर्ष 2002 से 2007 तक मेड़िया स्कूल में पारा शिक्षक के पद पर योगदान दिया। पांच साल बाद जब मेरा समझौता खत्म हुआ तो मुझे स्कूल छोड़ना पड़ा। इसी बीच संवाद संस्था की ओर से स्मॉल ग्रुप स्पोंट के तहत गांव में काम करने को मिला। हमने जैविक खेती, नर्सरी, मशरूम उत्पादन, जूट बैग, अगरबत्ती इत्यादि बनाने का प्रशिक्षण लिया। ग्रुप के साथ मिलकर गांव के तालाब में मछली पालन का काम किये। हमलोगों ने सामूहिक खेती भी किया। हमारे काम को लेकर गांव-घरों में चर्चा होती- कुछ सकारात्मक कुछ नकारात्मक। लोग कहते ये संस्था नहीं, सस्ता महिला समूह है। लेकिन समूह में होने के कारण इस ओर ध्यान नहीं जाता।

हमारे महिला ग्रुप में मैं और साल्गे मार्डी ही शादीशुदा थी, बाकी लागों की शादी नहीं हुई थी। उसी दौरान मैंने स्नातक की पढ़ाई पूरी की और इग्नू से बी.एड. भी किया। परिवार ने मुझे आगे बढ़ने में कोई मदद नहीं की। घर की सारी जिम्मेदारी निभाते हुए काम करती रही और अपने बच्चों की परवरिश भी।

2009 में हमारे समूह की महिलाओं को राशन की दुकान चलाने को मिला। इस दुकान के माध्यम से कई जानकारी प्राप्त हुई और समझदारी बढ़ी। प्रखंड कार्यालय, अनुमंडल कार्यालय जाने एवं सामाजिक कार्यों को करने से जिम्मेदारियां बढ़ी और काफी संघर्षों का सामना करना पड़ा। बच्चों की पढ़ाई के लिए देर रात तक जाग कर लोगों के कपड़े तैयार करती। सब कुछ इसी तरह चल रहा था, भले ही यह मुश्किल भरा समय था। अपनों के बीच सहमति बनी रहती थी। मेरा उद्देश्य यही था कि अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दे सकूं। मैं टेलर से टीचर बनी, फिर डीलर से लीडर बन कर समाज में अपना योगदान दे रही हूं।

2016 में मेरी जिदंगी में बहुत बुरा समय आया। मैंने अपने सबसे करीबी को खोया। उस समय मैं बहुत निराश हो गई थी। मैं खामोश हो गई और जीवन जीने की उम्मीद खो गई। मैं अपने आत्मविश्वास को बांध नहीं पाई और टूट गई। मेरे लिए यह समय बहुत ही कठिन था। मेरे सामने मेरा छोटा बेटा था जिसने मुझे हिम्मत दिया। मेरी मां ने मुझे संभाला था। फिर मैंने ठान लिया कि बेटे के सामने कभी कमजोर नहीं पड़ूंगी और मैंने अपने आंसू को छुपाया।

कार्य क्षेत्र में जब जाती तो क्षेत्रवालों की आंखों में आंसू पहले आते, जिनसे गहरा संबंध बन गया था। मेरे लिए यह सब बहुत कठिन था। परंतु हिम्मत के साथ

काम में मन लगाया। संवाद संस्था ने मुझे सहयोग किया और आगे बढ़ने का अवसर दिया। अब मुझे लगता है कि मैं उन जरूरतमंद लोगों की मदद करूं जो किसी न किसी कारण से आगे नहीं बढ़ पाए हैं। अपनी जिंदगी में संघर्ष कर रहे हैं। मेरे द्वारा अगर किसी के जीवन में यदि कोई बदलाव आए तो मुझे खुशी होगी।

❐❐

महिला किसान की जीवन-यात्रा

- सुमित्रा कुजूर

"यह आलेख एक महिला किसान की उस जीवन-यात्रा को सामने लाता है, जो अभाव, संघर्ष और सामाजिक बंधनों के बीच आकार लेती है। सुमित्रा कुजूर की कहानी ग्रामीण भारत की उन असंख्य महिलाओं का प्रतिनिधित्व करती है, जो चुपचाप जिम्मेदारियां निभाती हैं। शिक्षा, श्रम और खेती उनके लिए केवल साधन नहीं, बल्कि आत्मसम्मान की राह बनते हैं। हर कठिन मोड़ पर उन्होंने हार मानने के बजाय नए रास्ते खोजे। उनकी यह कहानी बताती है कि आत्मनिर्भरता किसी एक अवसर से नहीं, बल्कि सतत प्रयास से जन्म लेती है। साथ ही यह आलेख महिला किसानों की नेतृत्व क्षमता और सामाजिक भूमिका को रेखांकित करता है।"

मेरा नाम सुमित्रा कुजूर है। मेरा जन्म मेरे नाना के घर, छोटा जिलंगा गांव, जिला गुमला (झारखंड) में हुआ। मेरी मां मेरे जन्म से पहले ही मेरे पिता से अलग हो चुकी थीं, क्योंकि पिता अत्यधिक नशा करते थे और मां के साथ मारपीट भी करते थे। इस वजह से नाना मेरी मां को ससुराल से अपने घर ले आए। इसके बाद मैं और मेरी मां, नाना-नानी के साथ रहने लगे।

मैंने गांव से दो किलोमीटर दूर आरसी प्राथमिक विद्यालय, महुआ टोली में दूसरी कक्षा तक पढ़ाई की। फिर तीसरी से पांचवीं कक्षा तक गुमला के लूथरन मिडिल स्कूल में, अपनी बड़ी मां के पास पढ़ाई की। लेकिन वहां हमेशा पारिवारिक झगड़े होते थे, इसलिए मुझे फिर नाना के घर लौटना पड़ा। गांव से स्कूल की दूरी 14 किलोमीटर थी, जिसे मैं पैदल तय करती थी। सुबह 7 बजे निकलती और 9 बजे स्कूल पहुंचती। लौटते समय अंधेरा हो जाता। इन कठिनाइयों के कारण मैंने गांव के राजकीय मध्य

विद्यालय, गढ़टोली में आठवीं कक्षा तक पढ़ाई की।

घर की आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी। मां को लकड़ी बेचकर घर चलाना पड़ता था। जब मैं आठवीं में थी, तो परिस्थितियों से परेशान होकर घर से पलायन करने का विचार आया। एक रात मैं सामान पैक कर घर से निकलने ही वाली थी, कि मेरी मौसी ने दरवाज़ा घेर लिया और पूरी रात बैठी रही। इस वजह से मैं घर से निकल नहीं सकी।

आगे चलकर मैंने नवीं और दसवीं की पढ़ाई राज्य संपोषित उच्च विद्यालय, गुमला में की और वर्ष 2002 में मैट्रिक की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की। मेरी मां ने मेरी मैट्रिक पास करने से पांच साल पहले दूसरी शादी कर ली थी। मेरे सौतेले पिता की दो बेटियां पहले से थीं और बाद में मां से एक बेटा भी हुआ। वे गुमला में किराये के मकान में रहते थे।

मैं नाना-नानी के साथ ही रहती रही। उनके गुजर जाने के बाद मामा, मामी और मौसी का व्यवहार हमारे साथ अच्छा नहीं था। मैं इधर-उधर भटक रही थी, तभी मां ने मुझे अपने पास बुला लिया। मैट्रिक के बाद मैंने ईंट भट्ठा में और कभी-कभी रेजा (मजदूर) के रूप में काम किया। खेती के मौसम में खेती-बाड़ी भी करती थी।

कॉलेज में दाखिले के लिए मेरे पास कुछ पैसे थे और कुछ मां ने दिए। आने-जाने का भाड़ा निकालने के लिए सब्जी बेचने लगी और छुट्टियों में रेजा का काम भी करती थी। इस दौरान मुझे चादर बुनाई का प्रशिक्षण भी मिला, लेकिन पूंजी के अभाव में वह काम शुरू नहीं कर सकी।

हम तीन बहनें और एक भाई हैं। एक बार सौतेली बहन से झगड़ा हुआ और मैं मामा-मामी के घर चली गई। वहीं रहते हुए इंटर की परीक्षा दी। परीक्षा के बाद 30 दिन का पशुपालन और पशु चिकित्सा प्रशिक्षण लिया और दो साल तक इसी में काम किया, जिससे कुछ आमदनी होने लगी।

इंटर पास करने के बाद मैंने कार्तिक उरांव महाविद्यालय, गुमला में दाखिला लिया और काम की तलाश में जमशेदपुर अपनी सहेली के पास चली गई। वहां मार्केटिंग का काम किया और लगभग दो साल तक रही। फिर घर लौट आई। अब मां को मेरी शादी की चिंता सताने लगी थी। हम किराये के मकान में रहते थे। मां चना-मिक्चर बेचती थीं और पिताजी प्राइवेट गाड़ी चलाते थे।

मेरा मन था कि पहले घर बनाकर फिर शादी करूं, लेकिन मां का कहना था कि

उम्र निकल जाने के बाद लड़की को बहुत कुछ झेलना पड़ता है। उसी समय, 2008 में बेड़ो चरिमा गांव से रिश्ता आया और 31 जनवरी 2009 को मेरी शादी बड़े ही सादगीपूर्वक ढंग से संपन्न हुई।

मेरी शादी संयुक्त परिवार में हुई। परिवार में सास-ससुर, देवर-गोतनी, जेठ-जेठानी, चाचा-चाची, सभी एक साथ रहते थे। मेरे ससुर पशुपालन करते थे और प्रतिदिन 10–20 लीटर दूध बेचते थे। हम सब मिलजुलकर रहते थे। इसी बीच, 11 मई 2010 को मेरे बड़े बेटे का जन्म हुआ।

बच्चा दो महीने का था जब मैंने एक प्राइवेट स्कूल में पढ़ाना शुरू किया, जहाँ ₹2000 मानदेय मिलता था। लेकिन धीरे-धीरे पति नशे के आदी हो गए। ट्रैक्टर का लोन लिया था, जिसकी किश्त समय पर नहीं चुकाने के कारण ट्रैक्टर बैंक ने जब्त कर लिया। परिवार में झगड़े बढ़ने लगे। देवर की शादी के बाद भी सब कुछ ठीक नहीं हुआ। एक दिन छोटा देवर से झगड़ा हुआ, उस समय मैं गर्भवती थी और स्कूल छोड़ चुकी थी। सिर्फ 18 दिन बाद, 13 अगस्त 2015 को मेरे छोटे बेटे का जन्म हुआ और हमारा परिवार संयुक्त परिवार से अलग हो गया।

उस वर्ष खेती नहीं हो सकी और हम गंभीर आर्थिक संकट में आ गए। पति कभी-कभी मनरेगा के तहत काम करते थे। फिर मैंने महिला समूह से ₹ 30,000 और आरोहण संस्था से ₹ 15,000 का लोन लिया। मटर और मिर्च की खेती शुरू की।

इसके बाद महाजन से 30,000 और उधार लिया। बीज-खाद खरीदकर फिर से मटर की खेती की। मेहनत रंग लाई, फसल अच्छी हुई और दोनों कर्ज चुका दिए।

2020 में हमने भिंडी, करेला, बीन्स आदि लगाया, लेकिन समय पर पानी नहीं मिल पाया, जिससे नुकसान हुआ। उसी वर्ष जुलाई में मैंने टाटा रूरल इंडिया फाउंडेशन (TRIF) में काम शुरू किया। मिश्रित खेती, आम बागवानी और नर्सरी का काम सीखा। 45 दिनों का जैविक खेती और दवा निर्माण प्रशिक्षण लिया और प्रमाणपत्र भी मिला। दो वर्षों तक यह प्रोजेक्ट चला। अब मैं खुद जैविक खेती करती हूं, लोगों को भी इसके लाभ के बारे बताती हूं।

2022 में ट्रैक्टर चलाने का प्रशिक्षण लिया और फिर मुखिया चुनाव में भी भाग लिया। हारने के बावजूद बहुत कुछ सीखा। 1 जुलाई 2023 को 'संवाद' संस्था से जुड़ी। यहां गांव-गांव जाकर लोगों को योजनाओं की जानकारी देना, आवेदन

करवाना, लाभ दिलाना और ग्रामसभा बैठकों में भाग लेना मुझे बहुत अच्छा लगता है। इस संस्था ने मुझे सम्मान दिया और मेरे आत्मविश्वास को बढ़ाया।

2023 में हमने अपना छोटा-सा घर बनाया और एक दुकान भी खोली। इस दुकान में जैविक कीटनाशक, जैविक टॉनिक एवं जैविक खाद जो स्वयं मेरे द्वारा बनायी जाती है उसकी बिक्री करती हूं। हालांकि इससे आर्थिक बोझ बढ़ा और फिर से मैंने महिला समूह से ₹ 50,000 का लोन लिया। 100 किलो मटर लगाया, फसल अच्छी हुई है, अगर दाम अच्छा मिला तो मुनाफा भी होगा और लोन चुक जाएगा। नए फसल के रूप में मैंने स्ट्राबेरी की खेती की हैं उसकी फसल भी ठीक है।

आज जब पीछे मुड़कर देखती हूं, तो विश्वास नहीं होता कि कभी ऐसा भी समय था जब मुझे लगता था कि मैं अपने लिए ₹ 1000 का मोबाइल भी नहीं खरीद पाऊंगी, बच्चों को अच्छे स्कूल में नहीं पढ़ा सकूंगी, या कभी अपने पैरों पर खड़ी नहीं हो पाऊंगी। लेकिन मैंने कभी हिम्मत नहीं हारी। कठिनाई आई, तो भी आगे बढ़ती रही।

मेरी ज़िन्दगी संघर्षों से भरी रही, लेकिन हर संघर्ष ने मुझे मजबूत बनाया। आज मैं आत्मनिर्भर हूं, अपने निर्णय खुद ले सकती हूं और समाज में योगदान भी दे रही हूं। यही मेरी सबसे बड़ी उपलब्धि है।

❒❒

इस पुस्तक का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि यह विकास को किसी अमूर्त सिद्धांत की तरह नहीं, बल्कि रोज़मर्रा के अभ्यास के रूप में प्रस्तुत करती है। ग्रामसभा में महिलाओं की भागीदारी, सरकारी योजनाओं तक पहुँच, बचत समूह, सहकारिता, खेती, स्वास्थ्य, शिक्षा – ये सभी बड़े-बड़े शब्द यहाँ ज़मीन पर उतरते दिखते हैं। हम देखते हैं कि कैसे एक महिला किसी का फॉर्म भरने में मदद करती है, किसी को पेंशन दिलवाती है, कहीं सड़क या पानी की समस्या उठाती है – और यही छोटे-छोटे काम मिलकर लोकतंत्र को जीवित रखते हैं।

‘संवाद’ इस पुस्तक में संस्था के रूप में नहीं, बल्कि एक सहयात्री की तरह उपस्थित है। यह संस्था इन महिलाओं को बोलना सिखाती है, सुनना सिखाती है, सवाल करना सिखाती है – और सबसे ज़रूरी, अपने अनुभवों को महत्वपूर्ण मानना सिखाती है। यही कारण है कि इन कथाओं में आत्मविश्वास धीरे-धीरे विकसित होता दिखता है; कहीं झिझक टूटती है, कहीं डर छूटता है, कहीं मंच पर बोलने की हिम्मत आती है।

संवाद
SAMVAD